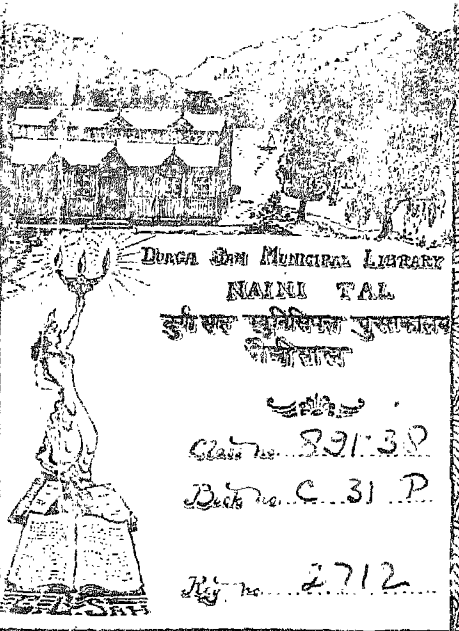


चतुरसेन साहित्य—एकसौ नवाँ ग्रन्थ

चतुरसेन की कहानियाँ—आठवीं पुस्तक

पीर नाबालिग़

(आँखों में आँसू और ओठों में हास्य लाने वाली छै कहानियाँ)

१—पीर नाबालिग़

२—अब्बाजान

३—मनुष्य का मोल

४—सविता

५—जैन्टिलमैन

६—विधवाश्रम

पीर नाबालिग

लेखक

आचार्य चतुरसेन

सम्पादिका

कमलकिशोरी

प्रकाशक

ज्ञानधाम-प्रतिष्ठान, दिल्ली (शाहादरा)

वितरण केन्द्र

चतुरसेन गृह

दिल्ली — काशी — पटना

जनवरी १६५३

सवा रुपया

प्रकाशक—

श्री चन्द्रसेन

सेक्रेटरी, ज्ञानधाम-प्रतिष्ठान

दिल्ली (शाहदरा)

मुद्रक—

गोपाल प्रेस

बनारस।

पीर नाबालिग़

[हमारे दिलफैंक फकड़ तबियत के पीर नाबालिग़ जैसे आदमियों को तो आपने भी देखा होगा। वे अपने छोटे से कलेजे में बड़ा सा हौसला रखते हैं। उनमें न विचार सामर्थ्य होती है, न मर्यादा की बाधा। मौज आई और करनी न करनी सब कर गुजरे। इसमें संदेह नहीं कि ऐसे लाखों तरुण देश में होंगे, जिन्होंने जान पर खेलकर ऐसे साहसिक कार्य किए—जिनका समूचा ही श्रेय लीडर लोग हड़प ले गए। आज वे स्वाधीन भारत के चौराहों पर आवारा गर्द बने फिर रहे हैं, उनमें स्वयं अपना मूल्य वसूल करने की सामर्थ्य नहीं, और दूसरा कोई क्यों अब उनकी तरफ देखेगा? विद्वान् कलाकार ने इस कहानी में ऐसे एक तरुण का ऐसा सही चित्र अंकित किया है कि उसे आसानी से भुलाया न जा सकेगा।]

१

कभी-कभी बनारस चला आया करता हूँ। काम करते-करते जब बहुत थक जाता हूँ, या दिमाग़ में कोई उलझन पड़ जाती है, या बीबी से बिगाड़ हो जाता है, तब बनारस ही एक जगह है—जहाँ आकर दिमाग़ ठण्डा हो जाता है। दशाश्वमेध से छतवाली एक बड़ी नाव पकड़ी और शरद की प्रभातकालीन धूप में गंगा की निर्मल लहरों पर तैरती हुई किश्ती की छत पर नंगे बदन एक चटाई पर औंधे पड़ कर वहाँ के सिद्धहस्त

मालिश करनेवालों से बदन में तेल मालिश कराना, दूधिया छानना और फिर किसी साफ़-सुथरे घाट पर, और कभी-कभी बीच धार ही में गंगा की गोद में चपल बालक की भांति उछल कूद कर जल क्रीड़ा करना, फिर गंगा की लहरों पर हंस की भाँति तैरती हुई किश्ती की छत पर बैठकर कचौरीगली की गर्मागर्म कचौरियाँ और रसगुल्ले उड़ाना, रस-भरे सुवासित मघई पानों के दोने पर दोने खाली करना, मन में कितना आनन्द, बेफ़िक्री, ताज़गी और मस्ती भर देता है। रात को बनारस की मलाई और पान की गिलौरियाँ वह लुत्फ़ देती हैं, जिसकी कल्पना भी दिल्ली के कचालू के पत्ते चाटने वाले नहीं कर सकते।

मित्र-मण्डली भी काफ़ी जुट गई है, यद्यपि मित्रों में न कोई नेकनाम लीडर हैं, न नामी-गरामी वकील, न कोई रईस। कुछ नौजवान दोस्त हैं, लोग उन्हें गुण्डा कह कर बदनाम करते हैं, पर मुझे उनकी सोहबत चन्द्रोदय मकरध्वज, च्यवनप्राश और मदनमंजरी बटी से भी ज्यादा ताक़त देने वाली साबित हुई है। मेरे ये बेफ़िक्रे दोस्त जब मेरी जेब के पैसों से दूधिया छान, कचौरियाँ हज़म कर, मलाई चाट कर, पान कचरते हुए, कैपस्टन के सुगन्धित धुएँ का बवण्डर मेरे चारों ओर उड़ेलते हुए, हर तरह मुझे खुश करने और हँसाने के जोड़-तोड़ में लगे रहते हैं, तब मैं हरगिज अपने को काने लार्ड वावेल से कम नहीं समझता। और इन दोस्तों की बदौलत एक हफ्ते ही में इस क़दर मस्ती और ताजगी दिमाग़ और शरीर में भर ले जाता हूँ, जो सैकड़ों रुपयों की दवाइयाँ खाने पर भी नहीं मुअस्सर हो सकती।

पीर नाबालिग

जो लोग नैनीताल, मंसूरी, काश्मीर और शिमला जाते हैं, मेरी राय में वे झखमारते हैं। मैं उनसे कहूँगा—वे बनारस आएँ, चित्रा में पान खाएँ, और मेरे बेफिक्रे दोस्तों की सोहबत का मजा उठाएँ। हाँ, यह बात जरूर है, उन्हें लाजिम है कि वे अपना बड़प्पन, बुजुर्गी, मनहूसियत, और लियाकत को अपने घर पर ही या तो अपनी बीबी के सुपुर्द कर आएँ या सेफ में बन्द कर आएँ। मेरे दोस्त ऐसे बड़े लोगों के पास नहीं फटक सकते।

२

इस बार कई महीने बाद बनारस आया था। तमाम गर्मी दिल्ली के जलते हुए मकानों में बितानी पड़ी। काम का बोझा इतना था कि दिमाग़ का कचूमर निकल गया। अब बनारस में आकर जो गंगा की निर्मल लहरों के ऊपर शरद के अमल-धवल हिम-श्वेत बादलों के बीच द्वादशी के चाँद को आँखमिचौनी करते देखा तो तबियत हरी हो गई। एक दिन गंगा की गोद में सान्ध्य-गोष्ठी की ठहरी। दोस्तों ने लम्बी छुट्टी की कसर निकालने के लिए दूधिया की जगह लालपरी का प्रोग्राम जड़ दिया।

रात दूध में नहा रही थी, और मेरे बेफिक्रे दोस्त लालपरी के रंगमें लाल गुल्लाला हो रहे थे। मैं अलस भाव से उनके बीच में चटाई पर पड़ा मन्द-मन्द हिलती हुई किश्ती की थपकियों का आनन्द ले रहा था। इस बार मण्डली में एक नए दोस्त की आमद हुई थी। यह नया अदद ऐसा था कि उसने बरबस मुझे अपनी ओर खींच लिया।

चुचके हुये गाल—सफेद रुई के गाले के समान। लम्बी नाक की नोक नीचे झुक कर होठ से सलाह सी कर रही थी।

उसी नोक पर गिलिट फ्रेम का एक भद्दा सा चश्मा रक्खा था। बिखरे हुए रूखे खिचड़ी बाल, आगे के तीन दाँत गायब, पान से बाहर तक रंगे हुए ओठ, बदन पर एक साधारण चैक-डिजाइन की कमीज़, कमर में बहुत ढीला मैला पायजामा, जिसका एक पायचा फटा हुआ। पैरों में बिना ही मोज़े के बहुत भारी शू, जिनमें फ़ीते नदारद, और धूल-गर्द इतनी कि साफ़ कहा जा सकता है कि फैक्टरी से निकलने के बाद उन्होंने पालिश की सूरत ही नहीं देखी। दुबले-पतले, कोई-छटाक भर के आदमी थे। न हँसते थे, न बोलते थे, न इठलाते थे, न मचलते थे। एक के बाद दूसरी बीड़ी जेब से निकालते और फूँकते जा रहे थे।

मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। परिचय पूँछा तो एक दोस्त ने मुस्कुरा कर सिर्फ इतना ही कहा—

"आप पीर नाबालिग़ हैं।" दोस्त के ओठ ही नहीं, आँखें भी मुस्कुरा रही थीं।

मैंने उठते हुए कहा—तब तो मुझे आपका अदब करना चाहिए।

और मैंने ज़रा उठ कर आदाब-अर्ज़ किया।

'पीर नाबालिग़' बन कर भी न बने। ठण्डे ठण्डे सलाम लेकर उसी गम्भीरता से बीड़ियाँ फूँकते रहे।

मैं ध्यान से उनकी ओर घूर कर देखता रहा। एक दोस्त ने कहा—आपके पास कुछ शिकायत करने आए हैं।

मैंने हैरान हो कर कहा—शिकायत ?

दोस्त के चेहरे पर शरारत की रेखाएँ साफ़ दीख पड़ रही थीं। उसने नक़ली गम्भीरता से कहा—जी हाँ, शिकायत ! आपको सुनना होगा, और मुनासिब बन्दोबस्त करना होगा।

मैं समझ गया कि कोई दिलचस्प फ़िगर है। मैंने भी वैसी ही गम्भीरता से कहा—तो मैं सब कुछ कर गुजरने पर आमादा हूँ, फ़र्माइए।

पीर नाबालिग ने धीरे से कहा—बनारस में जयप्रकाश नारायण आए हुए हैं, आपने सुना होगा?

"कल रात अखबार में पढ़ा था।"

"बनारस में उन्हें एक लाख की थैली भेंट की जा रही है, यह भी आपको मालूम है।"

"हो सकता है।"

"यह तो एक अन्धेर है।"

मैं कुछ नहीं समझा कि मेरे नये दोस्त क्या कहना चाहते हैं। मैंने अकचका कर कहा—अन्धेर?

सब दोस्त एकबारगी ही बरस पड़े। बोले—अन्धेर नहीं तो क्या? सोलह आना अन्धेर! फिर हम लोगों के रहते?

मुझे हँसी आ रही थी, परन्तु मैंने उसे रोक कर अत्यन्त गम्भीर स्वर में कहा—तब तो अन्धेर को रोकना होगा! मगर मामला क्या है वह भी तो कुछ सुनूँ?

पीर नाबालिग ने हाथ की बीड़ी फेंक दी, और जरा तेज़ स्वर में कहा—सुनना चाहते हैं तो सुनिए! भला बताइए तो, जय प्रकाश बाबू को किस बहादुरी के सिलसिले में इतना रुपया मिल रहा है।

मैंने धीरे से कहा—उनकी बहादुरी और देशभक्ति तो भारत का बच्चा-बच्चा जानता है! उन्होंने कितना त्याग किया, कष्ट सहे और देश की आजादी के लिए कितना भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं!

"तब आपको असल बात का पता ही नहीं है।"

मैंने बिना हुज्जत यह बात स्वीकार कर ली। कहा—आप ठीक कहते हैं, असल बात का मुझे सचमुच कुछ पता नहीं है! कुछ बताइए न भेद की बात।

दोस्तों ने भी ललकारा—बस भई, अब तुम सब कुछ कह डालो, घोड़े की लात की बात भी न छिपाओ।

मैंने कहा—घोड़े की लात की क्या बात है?

पीर नाबालिग एक मिनिट खामोश रहे, फिर कहा—देखिए, ये लीडर लोग सब सिर्फ जबांदराज़ी करते हैं! काम कोई और ही करते हैं। बयालिस के अगस्त आन्दोलन ही को ले लीजिए। क्या आप जानते हैं कि कचहरी से यूनिवर्सिटी तक के तार और खम्भे किसने तोड़े थे? कचहरी पर कलक्टर की नाक पर पैर रख कर तिरंगा झण्डा किसने फहराया था?

मैंने नम्रता से कहा—नहीं, ये सब भारी-भारी बातें मुझे नहीं मालूम हैं। आप उस वीर पुरुष का नाम बताइए तो।

पीर नाबालिग क्षण भर चुपचाप सिर नीचा किए बैठे रहे। फिर एक दोस्त की तरफ़ मुँह करके बोले—अब हम क्या कहें, तुम बता दो न बीरबल, सब कुछ तो तुमने देखा था, अब कहते क्यों नहीं?

बीरबल ने बाअदब कहा—आप ही कहिए, आपके मुँह से वे सब कारनामे आज हम गंगा की पवित्र गोद में बैठ कर सुनने का सौभाग्य प्राप्त करना चाहते हैं।

"तो सुनिए फिर, वह सब आपके इस गुलाम की कारवाई थी! हमारे पास एक ही रस्सी थी; उसीसे हमने और मोती ने मिल कर एक काण्ड रच डाला। रस्सी हम तार पर फेंकते और

उसपर झूल जाते। पचासों तमाशाई हमारा साथ देते, खम्भे और तार अर्रा कर टूट जाते। कचहरी से लेकर यूनिवर्सिटी तक का मैदान हम दोनों ने साफ़ कर डाला।"

सुन कर मैं चमत्कृत हुआ। मैंने कहा—मोती कौन?

'-वह तो अगले ही दिन गोली का शिकार हो गया! सोचिए, बारह-तेरह बरस का वह लौंडा और उसका यहकलेजा?"

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे गोली मेरे ही कलेजे में अभी लगी हो। दोस्त लोग तो शरारत ही के रंग में थे, परन्तु मेरे दिल में उस सीधे साधे युवक के प्रति आदर का भाव बढ़ता जा रहा था। कौतूहल भी कम न था। मैंने कहा—आप इतमीनान से मेरे और पास आकर बैठिए और माजरा बिस्तार से सुनाइए, कैसे क्या हुआ था!

एक दोस्त ने कहा—कचहरी पर तिरंगा झण्डा चढ़ाने की बात कहो, यार।

"वह भी मोती ही का करिश्मा था। कचहरी के सदर दर्वाजे के लोहे के फाटक बन्द थे। भीतर मशीनगनें तैयार थीं, चारों ओर घुड़सवार फौज और पुलिस लाठियाँ और बन्दूकें लिए मुस्तैद थी। बरना-पुल से अर्दली-बाजार तक आदमी ही आदमी नजर आ रहे थे। किसी ने ललकार कर कहा—'है कोई माई का लाल, जो जान पर खेल कर इस कचहरी पर तिरंगा फहरा दे?' बस, मेरा खून खौल उठा। मैंने आगे बढ़ कहा—'मैं हूं!' मैंने झण्डा लिया और एक ही छलांग में फाटक के उस पार हो गया। मगर मोती बिल्ली की तरह फाटक के नीचे से घुस कर मुझसे आगे आ खड़ा हुआ, और जब तक पुलिस आए, मैंने उसे कन्धे पर खड़ा कर नल

पकड़ा दिया और वह नल पर बन्दर की भाँति चढ़ गया—जा-कर कचहरी पर तिरंगा फहरा दिया ! पूँछिए मटरू से, वहीं तो खड़ा तालियां पीट रहा था !"

मटरू ने कहा—कहता तो हूँ, इन्हीं आँखों से यह सब काम मैंने देखा था, जिसके विवरण सोने की क़लम से भारत की आज़ादी के इतिहास में लिखे जाएँगे ।

पीर नाबालिग़ ने एक बीड़ी निकाली । मैंने झटपट सिगरेट पेश करके कहा—सिगरेट पिजिए और सुनाइए इसके बाद क्या हुआ ?

"उसके बाद लाठी-चार्ज हुआ । कांग्रेस के लीडरों ने कहा—'भागना कोई मत, जम कर लेट जाओ और लाठियाँ खाओ !"

"तो आप भी लेट गए ?"

"जी नहीं, मैं उन बेवकूफ़ों में नहीं हूँ जो बैठे-बैठे पिटते हैं । मेरा काम खत्म हो चुका था ; लाठी चली तो मैं वहाँ से भागा । फिर भी पीठ पर दो पड़ ही गईं । यह देखिए निशान, यह कोहनी भी उसी दिन टूट गई ।"

यार लोग खिलखिला कर हँस पड़े । परन्तु मैंने दोनों हाथों में उनकी कोहनी दबा कर कहा—खैरियत हुई दोस्त, ज्यादा चोट नहीं लगी ! आपने अच्छा किया, भाग आए ।

मटरू ने कहा—अब घोड़े की लात की बात कहो ।

पीर नाबालिग ने सहज शान्त स्वर में कहा—लात को क्या बात कहना है ! सामने एक तबेला था, मैं झपट कर उसी में घुस गया । उसमें एक घोड़ा बँधा था, मैं उसी पर जा गिरा ! उसने भी दो लातें कस दीं, बस इतनी ही तो बात है ।

पीर नाबालिग

"इतनी नहीं यार, खाट वाली बात भी कहो !"

"एक खाट वहाँ पड़ी थी। मैं बाहर तो निकल ही नहीं सकता था, घुड़सवार लोगों को कुचल रहे थे और पुलिसवाले लाठी चला रहे थे। उधर घोड़ा नामाकूल लात पर लात मार रहा था। मैंने वह खाट अपने और घोड़े के बीच में खड़ी कर ली। अब मारता रहे वह लात।" इतना कह कर पीर नाबालिग बेबस खिलखिला कर हँस पड़े। यार लोग भी हँस दिए। परन्तु मैं नहीं हँस सका। मेरी आँखों में आंसू आ गए।

पीर नाबालिग ने दो कश सिगरेट के खींच कर कहा—कहिए, किया है इतना काम जयप्रकाश नारायण ने ?

मेरा इरादा बिल्कुल इस सरल-हृदय वीर युवक का मज़ाक़ उड़ाने का नहीं रह गया। मैं चुपचाप उसकी तरफ़ देखता रहा। उसने फिर कहा—

"देखिए, क्रान्तिकारियों को क्या मैं नहीं जानता ? उनके लिए मैंने क्या-क्या जोखम नहीं उठाए ? बम और पिस्तौल छिप-छिप कर कहां से कहां पहुँचाए ! कितना खतरा था इन कामों में, भला कहिए तो ?"

मैंने कहा—बेशक, बेशक, आपके इन कामों का तो कोई मूल्य ही नहीं है।

"परन्तु साहब, मेरे जैसे न जाने कितने युवकों ने देश के काम में जोखिम उठाई। उनमें कितने गोलियों के शिकार हुए, कितने जेलों में सड़े। उनको न कोई जानता है, न कोई उनके जुलूस निकालता है, न उन्हें थैलियां भेंट की जाती हैं, न अखबार वाले उनकी तारीफें छापते हैं। मरते-खपते हैं हमलोग,

और वाहव ही लूटते हैं ये लीडर लोग ! कहिए, यह क्या अन्धेर नहीं है ?"

मैंने वास्तविक गम्भीरता से कहा—निस्सन्देह आप जैसे साहसी और वीर युवकों की ओर से उदासीन होना जबर्दस्त अन्धेर है। परन्तु एक दिन आएगा जब आप जैसे हजारों युवकों का उचित सत्कार होगा।

उन्होंने जोश में आकर कहा—हजारों क्यों, लाखों कहिए। परन्तु जहां इन लीडरों को बढ़-बढ़ कर बातें बघारने के लिए लाखों रुपयों की थैलियां मिलती हैं और जुलूस निकाले जाते हैं, वहाँ हम जैसे मामूली आदमी किस कदर सब तरह बर्बाद कर दिए गए हैं, इसे इन नेताओं तक कौन जनावे ? देखिए मेरा बाग, बगीचा, जमींदारी सभी तो नीलाम-कुर्क हो गई। ये लीडर लोग तो हमें जूते साफ करने को भी शायद नौकर न रखें ! वे आँख उठा कर तो हमारी ओर ताकते ही नहीं ! इतनी चाय-पानी, दावतें होती हैं, कभी बुलाया है हमको ?

युवक के भोलेपन पर मैं मुग्ध हो गया। बहुत रोकने पर भी हँसी आ गई। मैंने कहा—एक दिन आएगा, आपको भी बड़ी-बड़ी दावतें दी जाएँगी, अखबार वाले आपका नाम मोटे मोटे अक्षरों में छापेंगे।

"तो आप कुछ छपाइए न ! आप तो बड़े भारी लेखक हैं, आप जो लिख कर भेज देंगे—किस अखबार वाले की मजाल है जो न छापे ?"

मैंने हँस कर कहा—लिखूंगा, जरूर लिखूंगा दोस्त।

"खूब बढ़िया सी कहानी बना कर लिखिए।"

"कहानी ही बना कर लिखूंगा।"

पीर नाबालिग़

"मेरी फोटो आप छापना चाहेंगे तो मैं दे दूंगा, एक-ठो मेरे पास है।"

"अगर जरूरत हुई तो माँग लूँगा।"

"वह अखबार जयप्रकाश नारायण के पास भी भेजना आप।"

"इसकी भी कोशिश करूँगा। परन्तु इस समय तो दोस्त, एक बहुत ही जरूरी काम करना मुनासिब है।"

"कौन सा काम ?"

"इसी वक्त आपको एक ठसकदार दावत देना बहुत ही जरूरी है।"

दोस्त लोग टोपियाँ उछाल-उछाल कर हुर्रे-हुर्रे चिल्ला उठे। पीर नाबालिग़ जरा झेंप कर मुस्कुराने लगे। मैंने जेब से दस रुपये का एक नोट निकाल कर मटरू के हवाले किया। थोड़ी ही देर में गर्मागर्म कचौरियों, रसगुल्लों और मलाई पर हाथ साफ होने लगे। बातचीत के दौरान में पीर नाबालिग़ की बहादुरी की बहुत-बहुत तारीफ की गई। तबेले की लातों का बढ़-बढ़ कर जिक्र हुआ।

पीर नाबालिग़ बहुत खुश हो गए। एकदम दोने में से चार बीड़ा पान उठा कर मुंह में ठूँसते हुए बोले—इस दावत की खबर भी अखबार में छपनी चाहिए। जितनी बड़ी-बड़ी दावतें होती हैं, सब की खबरें अखबार में छपती हैं।

मैंने हँस कर कहा—जरूर, जरूर, मगर अखबार वालों को खबर देने कौन जायगा ?

पीर नाबालिग़ एकदम खुश हो कर बोले—यह मटरुवा

2712

साला वहीं कबीरचौरा ही पर तो रहता है, वहीं तो धड़ाधड़ अखबार छपता है, यही जाएगा।

मैंने कहा—मटरू भाई, तुम्हें अखबार में इस दावत की खबर ले कर जाना होगा।

"जी माफ कीजिए, इतनी भारी दावत की खबर अकेला बन्दा नहीं ढो सकता। हाँ, सब लोग चलें तो मुजायका नहीं।"

सब लोग खिलखिला कर हँस पड़े। पीर नाबालिग ने गम्भीरता से कहा—सभी लोग चलें फिर, क्या हर्ज है ?

मैंने उठ कर उस सरल-तरल युवक को छाती से लगाया। अपना समूचा सिगरेट का बक्स उसके हाथ में थँमा कर कहा—अभी सिगरेट पीओ दोस्त, सुबह इस मामले पर बिचार करने को दोस्तों की एक चाय-पार्टी होगी, तब देखा जायगा।

३

पीर नाबालिग खिलखिला कर हँस दिए। वे बहुत खुश थे और जब बहुत रात बीत जाने पर आज की यह दिलचस्प गोष्ठी बिखर रही थी, इसका प्रत्येक सदस्य बाग़-बाग़ था।

अब्बाजान

[इस कहानी में कलाकार ने एक पिता के हृदय को मूर्त किया है। और इस काम में उसे सफलता मिली है। पिता के हृदय की आसक्ति, द्वन्द और दुर्बलताओं का व्यक्तीकरण अद्वितीय है। कहानी उत्कृष्ट आत्मवर्णन पद्धति पर है।]

१

छुट्टी का दिन था। तीसरे पहर चाय पी कर गप्पे हाँकने को मास्टर जी के पास जा बैठा।

मास्टर जी बरामदे में बैठे मजे में गुड़गुड़ी पी रहे थे। मुश्की तम्बाकू की खुशबू चारों ओर फैल रही थी। मुझे देखा तो खुश हो गए। उनका लड़का मैट्रिक में पास हुआ था। उसी दिन नतीजा निकला था। मास्टर जी ने छूटते ही उसकी चर्चा शुरू कर दी। और आगे उसकी तालीम कैसे चलाई जाय, इस पर मेरी सलाह माँगने के बहाने अपने दिल के तमाम मंसूबे बयान कर डाले। मास्टर जी की इस खुशी में मैंने पूरा योग दिया और यह स्वीकार कर लिया कि उनका लड़का बड़ा योग्य है, प्रतिभाशाली है। और उनकी तमाम योजनाओं को बिना मीन मेष के पास कर दिया।

"लीजिए आ गया चण्डूल!"—एकाएक अमजद को सामने देखकर मास्टर जी की भौंहों में बल पड़ गए। धीरे से कहा—"अब घण्टों तक मगज चाटेगा!"

२

मैंने देखा—वह एक बूढ़ा मुसलमान था। दुबला पतला, पुरानी शेरवानी पहने, सिर पर दुपल्ली हल्की टोपी, खिचड़ी दाढ़ी और मोटे-मोटे काले होंठ, उनके भीतर तम्बाकू और पान से बिल्कुल सुरमई रंग के चितकबरे बेतरतीब टूटे फूटे दाँत, पैरों में एक मैला पायजामा। दूर से ही उसने झुक कर बार-बार सलामें झुकाईं। मास्टर जी सिर्फ मुस्कुरा कर ही रह गए। पास आने पर उसने फिर झुक कर सलाम किया।

मास्टरजी ने कहा—"कहो असजद, आखिर तुम्हारा लड़का मैट्रिक में रह गया, सुनकर बहुत अफसोस हुआ!"

"रह ही गया हुजूर! मगर अफसोस काहे का? 'गिरते हैं शहसवार ही मैदाने जंग में, वह तिफ्ल क्या गिरे जो घुटनों के बल चले'—मियाँ असजद ने एक फीकी हँसी हँसी और फिर एक साँस खींचकर अपनी दो उँगलियों से माथा ठोक कर कहा—'यह सब किस्मत का खेल है हुजूर, मैं आपको इसका जिम्मेदार नहीं ठहरा सकता। हुजूर ने तो वह मिहनत की–वह गुर सिखाए कि जिसका नाम। कलेजा निकाल कर रख दिया हुजूर ने, मानता हूँ। मगर क़िस्मत! कुछ लड़का भी कुन्द ज़हन नहीं। और यह तो देखिए–जो लड़के उसके पास आकर पढ़ जाते थे, सवालात हल करते थे, वे पास हो गए। मगर यह फेल।' असजद मियाँ एकदम ही हँस दिए। पर तुरत ही उन्होंने भौंहों में बल डाल कर कहा—"मगर हुजूर, मेरे दिल में चोर हैं, नाख्वादा हूँ तो क्या, जूतियाँ आपही लोगों की सीधी करता हूँ, धूप में बाल नहीं सुखाए हैं। कुछ ग़लती या बेईमानी जरूर हुई है, मेरा दिल कहता है हुजूर।"

मास्टर साहब ने उसकी ओर देखते हुए कहा—'ग़लती और बेईमानी कैसी भाई !"

"हुजूर सब जगह चोर बाजार का ज़ोर है। पैसे की मार से बड़े-बड़े नालायक पास हो जाते हैं। सरकार, गरीब की सब जगह मौत है। अहमद कहता था—उसने पर्चे अच्छे किए थे। क्या उनकी फिर से जाँच नहीं हो सकती ? मैं फीस दाखिल कर सकता हूं। मैं रियायत नहीं चाहता हूँ हुज़ूर !"

मास्टर जी ने मेरी तरफ क्षण भर देखकर अपनी मुस्कराहट को छिपाया और फिर गम्भीर बनकर कहा—"यह तो बहुत मुश्किल है भाई, अब तो सब्र ही करना होगा !"

"तो मैं सब्र ही करूँगा हुज़ूर ! मैंने तमाम उम्र सब्र ही किया है। जब अहमद की माँ मरी, तब मैंने सब्र किया। बहुतों ने कहा—निकाह कर लो। एक से एक बढ़कर पैगाम आए। मगर मैंने सोचा—जो मेरी इस क़दर दिलजोई करती थी, वह अस्मतवाली बीबी ही जब न रही तो निकाह करके क्या करूँगा ! खुदा उसे जन्नत दे ! उसने मुझे पाँच बेटे दिए। रहीम को मेरी गोद में देकर वह चली गई—तो मैंने उस पाक परवर-दिगार का शुक्रिया अदा किया, और कहा—ऐ खुदा, तेरी रहमत बड़ी है। बीबी चली गई तो माँ और बाप दोनों ही बनकर बच्चों को पालूँगा। सो हुज़ूर, मैंने इस तरह छोटे-छोटे यतीम बच्चों को पाला—जैसे चिड़ियाँ चुग्गा दे दे कर बच्चों की परवरिश करती है। मैंने कभी उन्हें यह महसूस होने न दिया कि वे यतीम हैं और उनकी माँ मर गई है !" बूढ़े अमजद के मोटे-मोटे होंठ काँपने लगे और उसकी चुन्धी आँखें गीली हो गईं।

पर वह कहता ही गया। उसने कहा—"हुज़ूर, जब मेरी

कसाले की कमाई से हमीद मियाँ पढ़ लिख कर पास हुए, और बड़े साहब ने खुश होकर उन पर रहमत बख्शी। अपनी ही मातहती में चालीस की नौकरी झट से दे दी। तब मैंने हौसला करके उसकी शादी भी लखनऊ के एक मातबर घराने में कर दी। अल्लाह का फजल हुजूर, बीबी उसे वह मिली कि क्या कहूं! उम्मीद थी—अब आराम से रोटियाँ खाने को मिलेंगी। हमीद और उसकी बीबी इन यतीम बच्चों को पाल लेंगे, मुझे छुट्टी मिलेगी—मगर नहीं, खुदा को कहाँ मंजूर था कि इस गुलाम को आराम मिले। सो हमीद मियाँ बीबी को लेकर दूसरे ही महीने अलग हो गए। एक महीने की भी तनख्वाह मेरी हथेली पर न रखी। खून का घूँट पी कर रह गया हुजूर, मगर मैंने हिम्मत न हारी, बच्चों को छाती से लगा कर अल्लाहताला का शुक्रिया अदा किया और रशीद मियाँ को जी जान से पढ़ाना शुरू किया।

"उन दिनों रशीद आठवीं में था। पास कर नवमीं में आया तो रिश्ते आने लगे। एक ही जहीन था हुजूर, और शक्ल सूरत से तो वह नवाबजादा लगता था। मगर अफसोस! दो दिन में मौत ने अपना हाथ साफ कर लिया। दिल के अरमान दिल ही में रह गए। खुदा उसे जन्नत दे। रशीद दिल पर दाग दे गया। बहुत आँसू बहाए हुजूर, आखें भी जाती रहीं। पर रशीद मियाँ तो गए सो गए। लाचार सब्र किया। हिम्मत बाँधी, और अपनी तमाम उम्मीदें बशीर पर बाँधी!"

'आप की दुआ से ग़रीब हूँ, महज दफ्तरी—मगर क़िस्मत का धनी हूँ। औलाद जो मैंने पाई वह किसी नवाब को नसीब होना भी मुमकिन नहीं। बशीर बहुत जहीन था, हर साल डबल

कुछ उनकी कमाई का मुहताज नहीं। पर वे खुश रहें में मैं भी खुश हूँ।'

मास्टर साहब ऊब कर खड़े हो गए। अमजद सब कुछ नहीं सका। बहुत कुछ कहना चाहता था, परन्तु मास्टर हेब अब सुनने को तैयार न थे। उन्होंने कहा—'तो अमजद, मला रखो, अगले साल।'

'जी हां हुजूर, अगले साल। दिन जाते क्या देर लगती है। का ज़हीन है, साहब खुश हैं। अगले साल......'

उसके काले-काले मोटे होठों में अगले साल की आशा में स्य फैल गया। दोनों हाथ उठा कर उसने मास्टर साहब को र मुझे सलाम किया और दाढ़ी और होठों में कुछ कहता ा चला गया।

मनुष्य का मोल

["'पौरुष' शब्द के अन्तर्गत जिस उग्र साहस और तेजस्विता की प्रतिष्ठा भूमि है, वह नैसर्गिक रूप में बहुत कम पुरुषों में मिलता है। जिनमें वह होता है--उनके सत्कर्म और दुष्कर्म, एवं दुस्साहस अबाध्य गति से 'सिद्धि' के ध्येय पर चलते रहते हैं। वह पुरुष--'सिद्धि' का अग्रदूत होता है। 'करणीय' और 'अकरणीय'के फेरमें नहीं पड़ता। ऐसे पुरुष में अनासक्ति ऐसी होती है, कि उसका प्रत्येक भला बुरा कार्य श्लाघनीय बन जाता है। ऐसे ही एक पौरुषतत्त्वयुक्त पुरुष का रेखाचित्र इस कहानी में कलाकार ने चित्रित किया है।"]

१

जेलर ने उसे आफिस में बुलाकर कहा--"तुम छूट गए।" इसके साथ ही मेट ने उसके पुराने कपड़े और साढ़े सात रुपए सामने रख दिए।

सात साल तक जेल की दीवारों के भीतर रहने के बाद आज जब उसे यह शुभ-सम्बाद मिला तो उसने न तो नियमानुसार जेलर को सलाम किया, न कोई खास खुशी ही प्रकट की। उसने अपने सात साल पूर्व की सहेज कर रखी हुई सलवार और कमीज़ को गहरी आँखों से देखा, फिर उसकी दृष्टि मेज पर पड़े हुए साढ़े सात रुपयों पर अटक गई। न जाने क्या सोच कर

उसके होंठों पर मुस्कुराहट आई। उसने चुपचाप जेल के कपड़े उतारे, अपने कपड़े पहने और उन रुपयों को लापरवाही से कमीज़ की जेब में डाला। फिर तपाक से अपना हाथ उसने जेलर की ओर बढ़ा दिया।

जेलर हिन्दुस्तानी था। सलाम के स्थान पर कैदी का हाथ आगे बढ़ा देख वह क्षण भर के लिए कुण्ठित हुआ और फिर हँस कर उसने कैदी का हाथ प्रेम से थाम लिया। बूढ़े जेलर ने हँसते हुए कहा—"देखो सरदार, तुम एक साहसी आदमी हो। तीन साल से तुम मेरे साथ हो—इस बीच कई संघर्ष मेरे तुम्हारे बीच हुए, तुम्हारा पिछला रिकार्ड भी अच्छा नहीं था, पर मैं तुम्हारे गुण भी जान गया हूँ। तुमने दब कर रहना सीखा ही नहीं। तुम यदि इसी गुण को ठीक-ठीक काम में लाओ तो अपने जीवन को अभी भी सुधार लोगे। और देखो—तुम अब अपना पिछला पेशा मत करना।"

"अर्थात् डाकेज़नी?"

"डाकेज़नी और खून भी।"

"खून, तो मेरा पेशा नहीं, वह तो कभी २ लाचारी की हालत में..."

"नहीं, नहीं, मेरे दोस्त, किसी भी हालत में नहीं। वादा करो, तुम एक भले आदमी की तरह अपना जीवन बिताओगे।"

कैदी ने हँस कर बूढ़े जेलर से फिर हाथ मिलाया और कहा—"ऐसा ही मैं करूँगा जेलर साहब।"

और फिर उसने दरवाजे की ओर कदम बढ़ाया।

बाहर सुनहरी धूप फैल रही थी, सड़क पर दो-चार भद्रजन हवाखोरी को निकले थे, उसमें एकाध नौजवान जोड़ियाँ भी थीं।

युवतियाँ रंगीन तितलियों की भाँति प्रातःकालीन समीर के झकोरों का आनन्द ले रहीं थीं। एक मजदूर दम्पति ऊँचे स्वर से बिरहा गाते जा रहे थे। तारकोल की चमचमाती सड़कों पर बीच-बीच में तेज़ रफ्तार से मोटरें निकल जातीं थीं। एक बूढ़ा सड़क के किनारे अपनी छोटी-सी दूकान सजा रहा था।

कैदी ने यह सब देखा। सात साल बाद उसके सामने विस्मृत संसार के रंगीन दृश्य आ-जा रहे थे।

कैदी धीरे-धीरे कभी इस चलती-फिरती दुनिया को देखता हुआ और कभी अपने भूत-भविष्य का ध्यान करता हुआ आगे बढ़ रहा था वह कहाँ जा रहा है, इस पर उसने विचार ही नहीं किया था। पर जब वह अकस्मात् रेलवे स्टेशन के सामने जा खड़ा हुआ तो ठिठक कर कुछ सोचने लगा। फिर दृढ़ कदमों से वह टिकट घर की खिड़की के सामने जा खड़ा हुआ। कमीज़ की जेब में उसने हाथ डाला, और जितने पैसे जेब में थे, सब निकाल कर खिड़की के भीतर लापरवाही से फेंकते हुए उसने कहा—"एक टिकट दिल्ली का।"

टिकट बाबू ने आँखें उठाकर देखा—टिकट के दाम से बहुत ज्यादा रुपए सामने पड़े थे। उसने पूछा—"किस क्लास का?"

कैदी ने लापरवाही से कहा—"चाहे जिसका भी दे दो।"

बाबू ने रुपए गिने और सेकेण्ड क्लास का एक टिकट दे दिया। एक उड़ती नज़र उसने अपने टिकट पर डाली और कुछ बड़बड़ाता-सा प्लेटफार्म की ओर बढ़ गया।

गाड़ी आने में देर थी, भूख उसे लग रही थी, स्टेशन पर

चाय-टोस्ट, पूरी-हलवा और फल बिक रहे थे। परन्तु उसकी जेब में अब एक भी पैसा न था। उसने हँस कर अपनी भूख को बहलाया और प्लेटफार्म के एक किनारे, गाड़ी की प्रतीक्षा में टहलने लगा।

२

वह दिल्ली पहुँचा तो दिन ढलने लगा था, लेकिन धूप अब भी बहुत तेज़ थी, और भूख उससे भी तेज़। दिल्ली में उसका कोई दोस्त भी न था। वह स्टेशन से निकल कर कुछ सोचता हुआ एक ओर चल दिया। सड़क के दोनों ओर खाने-पीने की दूकानें थीं, कुछ होटल भी थे। उसने सोचा—क्या मुझे पेट के लिए आज ही फिर वही काम करना पड़ेगा, जिसे न करने का वचन मैं बुड्ढे जेलर को दे आया हूँ।

सामने एक शानदार होटल देख वह साहसपूर्वक उसमें घुस गया और एक खाली मेज़ पर शान से बैठ गया। बॉय आया और उसने खाना लाने का संकेत किया। खाना खा चुकने पर उसने बिल माँगा; बिल आने पर उसने दवात-कलम मँगाई और बिल की पीठ पर लिख दिया—इसका रुपया फिर कभी दिया जायगा! बॉय अकचका कर उसके मुँह की ओर देखने लगा। उसे इस प्रकार घूरते देख उसने उसे डाँट कर कहा—"जाओ और मैनेजर को यह कागज दे दो।"

कागज पढ़ कर मैनेजर उसकी मेज़ पर आया। उसने देखा, एक तगड़ा रुआबदार आदमी बेपरवाही से अकड़ा हुआ कुर्सी पर बैठा है। उसने कहा—"बिल का पेमेंट क्यों नहीं करते?"

"क्या तुम्हीं मैनेजर हो?"

"जी हाँ" मैनेजर ने कुढ़ कर कहा।

"तो पेमेंट की बाबत बिल की पीठ पर लिख दिया गया है कि पेमेंट फिर कभी हो जायगा !"

"लेकिन क्यों ?"

"क्यों कि अभी रुपया नहीं है ।"

"तब खाना क्यों खाया ?"

"भूख लगी थी ।"

"तुम्हें सोचना चाहिए था कि यहाँ खाना खाने पर रुपया देना होता है ।"

"वह हमने सोचा था, परन्तु याद रखो, यहाँ 'तुम' कोई नहीं है, आप कहो ।"

"गोया आप एक शरीफ़ आदमी हैं ।"

"शरीफ़ न होता तो मैं तुम्हारी तिजोरी तोड़ कर उसकी सब जमापूंजी मालमत्ता निकाल ले जाता, फिर महीनों तक तुम्हें थोड़ा-थोड़ा देता और सलामें लेता ।"

सवाल-जवाब दिलचस्प थे, सुनने वालों की दिलचस्पी बढ़ रही थी । एक ने पूछा—"आप कौन हैं ?"

"मैं एक खूनी डाकू हूँ ।"

यह शब्द सुनते ही वहाँ बैठे प्रत्येक व्यक्ति ने चौंक कर उसकी ओर देखा, कुछ लोग उसे घेर कर खड़े हो गए । मैनेजर के माथे से पसीने की बूँदें चूने लगीं ।

एक वृद्ध भद्रजन ने आगे बढ़कर पूछा—"आप कहाँ से आ रहे हैं ?"

"जेल से ?"

"शायद लम्बी सज़ा काटी है ।"

"जी हाँ, पूरे सातसाल"

कुछ देर वे चुपचाप उस व्यक्ति की चमकती आँखों की ओर देखते रहे, फिर जेब से मनीबेग निकाल कर उसका बिल अदा किया, और उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहा—"आओ मेरे साथ।"

वह चुपचाप आ कर उनकी मोटर में बैठ गया। मोटर सायंकालीन हवा के सुरभित झकोरों में उड़ती हुई एक तरफ़ चल दी।

३

क़िस्सा सुन कर भद्रपुरुष ने हँसते हुए उसकी पीठ पर हाथ रखा, और कहा—"तो तुम जेलर से की हुई प्रतिज्ञा पर दृढ़ हो?"

"यदि बिल्कुल ही लाचारी न हुई?"

"क्या मेरे साथ काम करोगे? मगर कड़ी मेहनत करनी होगी।"

"क्या डाकेजनी से भी अधिक?"

वे हँस पड़े। उसने पूछा—"पहिले यह कहिए—आप मेरा विश्वास करेंगे?"

"क्यों नहीं?"

"लेकिन मैं एक खूनी डाकू हूँ, सज़ा-यःफ़्ता। जेल का जीव!"

"मुझे तो तुम एक तेजस्वी, साहसी और मुस्तैद पुरुष प्रतीत होते हो, तुम्हारी निर्भीकता पर मैं मोहित हूँ, यदि तुम मेरे साथ काम करो, तो मेरी फर्म में मेरे बाद तुम्हारा ही दर्जा समझा जायगा।"

"मगर मैं ज्यादा पढ़ा-लिखा भी तो नहीं!"

"दस्तख़त तो कर लेते हो ?"

"अगर करना ही पड़े तो कर लूँगा !"

"तो आज से तुम मेरे प्रधान सहायक हुए। मैं ठेकेदार हूं। बड़े-बड़े ठेके लेता हूं। लाखों का कारबार फैला है। हजारों आदमियों से लेन-देन करना होता है, वह सब तुम्हें करना होगा !"

"मैं करूँगा, पर वेतन ?"

"वेतन कुछ नहीं !"

"खाऊँगा कहाँ से ?"

"जहाँ से मैं खाता हूँ ।"

"अच्छी बात है। मेरा नाम नरेन्द्र सिंह है, किन्तु आप सरदार नरेन्द्र सिंह कह कर पुकार सकते हैं !"

"तो सरदार नरेन्द्र सिंह, मैं सबसे पहले तुम्हारे साहस की परीक्षा लूँगा। मैं तुम्हें बाघ के मुँह में भेजूँगा।"

"बाघ के मुँह में किस लिए ?"

"उसके दाँत गिनने के लिए।"

ठेकेदार ने हँसकर कहा–"एक्जूक्यूटिव इञ्जीनियर एण्डरसन आदमी को देखते ही काट खाने दौड़ता है, अच्छा ख़ासा भेड़िया है। यह लो बिल, पास करा कर लाओ तो जानूँ। छः महीने से पड़े हैं !"

नरेन्द्र सिंह ने चुपचाप बिल ले लिए।

४

"टुम कौन है ?"

"मैं सरदार नरेन्द्र सिंह !"

"अम नेई माँगटा टुम कू, मैन, बाहर जाओ।"

"लेकिन मैंने तो सुना था कि सिर्फ साहब ही भेड़िया है, आपकी तो कोई तारीफ नहीं सुनी था ?"

"तारीफ कैसा ?"

"कि आप आदमी को देखते ही काटने दौड़ती हैं ? आपको जानना चाहिए कि हमारे देश में ऐसी औरतें नहीं पसन्द की जातीं, उन्हें सुशील, मिठबोली और मेहमान निवाज होना ही चाहिए !"

"टुम कहाँ से आया है ?"

"मुझे साहब से काम है, खानगी नहीं-बिजनेस का। आप से मेरा कोई वास्ता नहीं, कहिए साहब कहाँ है ?"

"मेम साहब आज बुरी तरह परेशान थीं। उनके मिजाज का पारा तेज था, पर इस अद्भुत् और निर्भीक आदमी से फटकार खा कर उनका गुस्सा हिरन हो गया। कुछ देर वह चुपचाप नरेन्द्र सिंह का मुँह ताकती रहीं। फिर बोलीं।

"लेकिन टुम कौन है !"

"ठेकेदार का आदमी हूँ।"

"मगर टुम ठेकेदार के माफिक टो बाट नेई करटा।"

"ठेकेदार के माफिक कैसा ?"

"वो सलाम करटा है, हुजूर कहटा है और अडब से बोलटा है।"

"और इतने पर भी आप लोग उनके साथ ऐसा व्यवहार करते हैं, जैसा मेरे साथ किया है ? क्या आपकी विलायत में औरतें मर्दों से इसी तरह बोलती हैं !"

"अमको तुम माफ़ करो मैन, इस वक्त अम झंझट में हैं।"

"मैं कोरा मैन नहीं, मेरा नाम नरेन्द्र सिंह है। पर आप 'सर्दार' कह कर पुकार सकती हैं। हाँ आपका मंशा क्या है, सुनूँ तो।"

"मुजकू रुपया चाहिए।"

"कितना?"

"दो हजार रुपया। अभी रुपया हाथ में नहीं है, अमको क्रिसमस का सौगाट खरीदना है।"

"आपको कब रुपया चाहिए।"

"कल सुबह।"

"तो रुपया आपको मिल जायगा। फिक्र न करें।"

"थैन्कयू, सरडार। रुपया जल्ड लौटा डिया जायगा।"

"खैर, देखा जायगा, लेकिन साहब से मुलाकात नहीं होगी?"

"अबी नहीं, पर टुम अपना बिल अमको डे सकता है।"

"यह लीजिए, कल सुबह मैं आऊँगा।"

"गुडबाई सरदार"

"गुडबाई मैडम"

५

ठेकेदार एक आवश्यक कार्यवश कलकत्ता चले गए थे। सरदार को रुपया मेम साहेब को देना बहुत जरूरी था। उसने निर्भय सेफ का ताला तोड़ डाला और पाँच हजार रुपयों के नोटों का एक बण्डल निकाल कर जेब में रख लिया। किसीने भी उसे यह काम करते देखा नहीं। अपना काम पूरा करके सरदार इतमीनान से सो गया।

प्रातःकाल साहब के बंगले पर जाकर सरदार ने मेम साहब से मुलाकात माँगी। इस समय वह फुफकारने वाली नागिन न थी। वह पालतू बिल्ली की भाँति दौड़ी आई और कहा—"हल्लो सरदार, क्या रुपया मिला! ओह, कल डाक का जहाज छूट जायगा. रुपया नहीं मिलेगा तो सब गड़बड़ हो जायगा।"

"रुपया मैं ले आया हूँ, यह लीजिए। थोड़ा ज्यादा ही लाया हूँ, शायद और जरूरत आ पड़े।" सरदार ने सहज भाव से कहते हुए नोटों का बण्डल मेम साहब के हाथों में थमा दिया।

६

साहब के बंगले से लौट कर नरेन्द्र सिंह जब आफिस पहुँचे तो वहाँ तहलका मचा हुआ था। दल-बल सहित पुलिस वहाँ उपस्थित थी। थानेदार और सिपाही अपना पूरा रोब-दाब चपरासियों, क्लर्कों और नौकरों पर गाँठ रहे थे।

नरेन्द्र सिंह जाकर सहज स्वभाव से अपनी कुर्सी पर बैठ गया। मालिक ने उसे अपना प्रधान सहकारी बनाया था यह सभी जानते थे। सरदार पर चोरी का किसी के शक न था। थानेदार ने कहा—"सुना आपने पाँच हजार रुपए तिजोरी तोड़ कर चोरी गए हैं। कहिए आपको शक है किसी पर?'

"शक? शक की क्या बात है।"

"यह किसका काम हो सकता है, आप कुछ कह सकते हैं?"

"यक़ीनन।"

"अच्छा, तो आपको कुछ सुराग लगा है?"

"अरे भाई, रुपये तो निकाले ही गए हैं।"

"यह तो ठीक है पर निकाले किसने ?"

"मैंने, और किसने ?"

"आपने ?" दारोगा ने मुँह फैलाकर कहा।

"जी हाँ।"

"आपने रुपया किस लिए निकाला ?"

"जरूरत थी।"

"लेकिन ऐसा तो आपको नहीं करना चाहिए था।"

"मुझे आप नसीहत देते हैं ?"

दारोगा को भी गुस्सा आ गया। उसने कहा—"तो आप तसलीम करते हैं कि आपने चोरी की है ?"

"मैंने रुपया तिजोरी से निकाला है।"

"ताला तोड़ कर ?"

"जी हाँ।"

"क्यों ?"

"क्योंकि, ताली मेरे पास न थी।"

"पर रुपया तो आपका न था ?"

"आपको इससे कोई सरोकार नहीं।"

"क्या रुपया आफिस के काम के लिए चाहिए था ?"

"नहीं, मेरी निजी जरूरत थी।"

"तब वह रुपया कहाँ है ?"

"खर्च हो गया।"

"गोया रुपया कहाँ है, यह नहीं बताएँगे आप ?"

"नहीं।"

"खैर देखा जायगा, अभी मैं आपको चोरी के जुर्म गिरफ्तार करता हूँ। आप थाने चलिए।"

थानेदार साहब ने सरदार को ले जाकर हवालात में बन्द कर दिया। बहुत पूँछने पर भी उन्होंने यह नहीं बताया कि रुपया कहाँ है।

७

तार पाकर ठेकेदार साहब आए। अदालत में जाकर उन्होंने बयान दिया—'मेरे ही हुक्म से ताला तोड़ कर उसने रुपया निकाला है। रुपया मेरे ही काम में खर्च किया गया है, उसे छोड़ दिया जाय।'

हथकड़ियाँ खुलवा ठेकेदार उसे अपने साथ मोटर में बैठा कर घर ले आए। राह में सरदार ने कहा—'मैं मजबूर हो गया। रुपये की मुझे बहुत जरूरत पड़ गई। आपको इत्तला देनेका समय न था, इसीसे ऐसा करना पड़ा।

ठेकेदार साहब ने कहा—"सरदार, मैंने तो तुमसे कैफियत तलब नहीं की। रुपया जैसा मेरा है, वैसा ही तुम्हारा है। अब आइन्दा तिजोरी की चाभी तुम्हीं अपने पास रखा करो।"

ठेकेदार के उदार हृदय को देख सरदार नरेन्द्र सिंह की आँखें गीली हो गई, पर उसने मुँह से एक शब्द भी नहीं कहा।

८

सरदार की यशोगाथा इञ्जीनियर साहब और मेम साहब के कान में भी पड़ी। मेम साहब ने सरदार को पत्र लिख कर बुलाया। पत्र खुद एक्जिक्यूटिव इञ्जीनियर ने लिखा था। उसमें नम्रतापूर्वक चाय पर सरदार को आमंत्रित किया गया था। पत्र के कोने पर मेम साहब ने लिखा था—कृपया जरूर आइए।

साहब ने हँस कर कहा—"जेल में कैसा लगा सरदार?"

"अरे, वह तो एक दिल्लगी थी।"

चाय खत्म करके साहब ने कहा—"सरदार, आपको हम थोड़ा काम देना माँगता है, उम्मीद है, आप उसे मिहनत और ईमानदारी से करेगा। यह कन्ट्रैक्ट के कागज तैयार हैं, इन पर दस्तखत कर दो। आपको रुपया पेशगी सरकार से मिलेगा। हमने सिफारिश की है। हम और मेम साहब आपका और भी खिदमत करके खुश होंगे।"

सरदार ने आँख उठा कर मेम साहब का सुन्दर आकर्षक चेहरा देखा। मेम साहब की आँखें खुशी से चमक रहीं थीं। उन्होंने मोहक मुस्कुराहट होठों पर बिखेर कर कहा—"डस्तखट् करडो—सरदार, डस्टखट्।"

सरदार ने साहब के बताए स्थलों पर दस्तखत कर दिए। और वह हाथ मिलाकर तथा कन्ट्रैक्ट के क़ागजात जेब में डाल कर ठेकेदार के पास आए।

क़ागजात देखकर ठेकेदार साहब दंग रह गए। लाखों का काम था, फिर सब रुपया पेशगी देने की सरकार से सिफ़ारिश की गई थी।

ठेकेदार ने कहा—"सरदार, मुबारक हो। यह तुम्हारा काम है।"

"जी नहीं यह हमारा काम है, हमारा—मेरा और आपका दोनों का। आप हुक्म देंगे, सरदार उसे बजा लाएगा। आप मेरे मालिक हैं, मैं आपका ताबेदार।"

ठेकेदार ने उठ कर सरदार को गले से लगा लिया। उसने कहा—"सरदार, मैंने बीस बरस एड़ियाँ रगड़ कर जितना रुपया

पैदा किया, इतना तुम इसी एक काम में सिर्फ दो साल में पैदा कर लोगे।"

सरदार ने ठेकेदार का हाथ मुलामियत से अपने हाथ में लेकर कहा—"हम जो कुछ पैदा करेंगे, वह आपही के मुबारक हाथों से। वह सब मेरा नहीं—आपका होगा।"

\+ + +

यह जो आलीशान राजमहलों को लजानेवाली कोठी नई दिल्ली के मुख्य चौराहे पर आने जानेवालों का ध्यान अनायास ही अपनी ओर खींच रही है, सरदार बहादुर दीवान नरेन्द्रसिंह की है। वे बूढ़े हो चुके हैं, बाल सब पक कर खिचड़ी हो गये हैं, कारबार बहुत फैल गया है। दो-चार सौ आदमी हर समय उनके पास आते-जाते रहते हैं। दस-बीस मोटरों का ताँता द्वारपर लगा ही रहता है। गवर्नर से लेकर आला-अदना प्रत्येक व्यक्ति उनकी प्रतिष्ठा करता है। उनके भाग्य को चमकानेवाली वह मेम साहब अब अपने पति के साथ विलायत जा चुकी है और दृढ़ता से उनका हाथ पकड़नेवाले ठेकेदार साहब भी मर चुके हैं, परन्तु उनके लड़केवाले सब सरदार की अधीनता में काम करते हैं। सरदार उनका बहुत ख्याल करते हैं। उन्होंने अपनी शादी नहीं की। पूँछने पर वे जोर से हँसकर कहते हैं—"फ़ुर्सत ही नहीं मिली शादी करने की। अबकी बार फिर जवान हो पाऊँ, तो किसी लड़की को देखूँ।"

सविता

[कलाकार कभी २ विनोद के मूड में आता है। उस समय उसकी लेखनी उछल कूद करने लगती है। बहुधा असंयत भी हो जाती है। उसकी हालत उस बालक के समान हो जाती है—जो कोई असाधारण दृश्य आकर्षक अचानक देखकर दोनों हाथों से ताली बजाकर किलकारी मारने लगता है।

पाखण्ड को सच्चा कलाकार विनोद ही की दृष्टि से देखता है। पाखण्डी पर उसे क्वचित् ही क्रोध आता हो, वह तो उसके पाखण्ड की सारी खटपट को उसी दृष्टि से देखता समझता है—जैसे बच्चों की किसी चोरी या चालबाजी को उसके माता-पिता विनोद की दृष्टि देखते हैं। पाखण्ड के सफल अभिनय पर उसे अनायास ही हँसी आ जाती है। और जब पाठक उस पाखण्ड की भूमिका को देख २ कर क्रोध से सुलगने लगता है। तो कलाकार की लेखनी हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाती है।

इस कहानी में लेखक ने अपनी लेखनी को मचलने की खुली छूट दे दी है। और वह खूब उछल कूद करके व्यंग बाण चला रही है। अब आप कविता पर, सविता पर, पाण्डे पर, गुस्सा होते रहिए। पर कलाकार तो इस वक्त विनोदी मूड में है। हँसी से उसका बुरा हाल हो रहा है]

१

सविता और कविता उन दोनों का नाम है। सविता छोटी और कविता बड़ी है। दोनों के भावुक कोमल नामों को पढ़कर ही आप उनके विषय में एक माधुर्य-भरा भाव हृदय में उत्पन्न कर सकते हैं। परन्तु आपको सब बातों पर भले आदमी की

भाँति विचार करना होगा। खास कर उस हालत में, जब कि दोनों का ब्याह हो चुका है, और दोनों ही माँ भी बन चुकी हैं। यह बात हम पहले ही साफ-साफ कह देना चाहते हैं, ताकि आपकी कल्पना का चर्खा कुछ उल्टे-सीधे तार कातना शुरू न कर दे। आपके लिए भलाई इसी में है कि उनके विषय में जो कुछ हम बयान करते हैं, उसे ध्यानपूर्वक सुनें, समझें और फिर यदि मनमानी करें, तो हम कुछ न कहेंगे।

आप कल्पना कीजिए एक बूढ़े बाप की दो जवान लड़कियों की, जिनकी माँ उनको बचपन ही में छोड़कर मर गई, और बाप ने अपनी उतरती जवानी में एक चढ़ती जवानी की दिलचस्प मास्टरनी से शादी कर ली। वह शादी शाद रही या नाशाद इससे आपको कोई सरोकार नहीं। हम सिर्फ इतना ही कहेंगे कि उनके इस मरम्मत-शुदा दाम्पत्य में उन्हीं दिनों झटपट ही एक फल आया और वह एक पुत्र के रूप में परिणत होकर सदैव के लिए पतझड़ हो गया।

लड़कियों को बढ़ना था, बढ़ीं। नाजुक जवान बीबी और उससे भी ज्यादा बदजबान दफ्तर के बड़े बाबू की नाज़बर्दारी से जो रत्ती-माशा समय बचता, उसी में वे लड़कियों की देखभाल करते। सौतेली माँ जितनी ममता उनके प्रति कर सकती थी, उससे दोनों लड़कियाँ घर के स्नेह-हीन वातावरण के कामकाज में पिसती रहतीं। बूढ़े बाप धनी न थे, पर 'कल्चर्ड' थे। लड़कियों के लिए वे और कुछ चाहे न कर सकें, उन्हें पढ़ाते लगन से रहे। इस तरह सविता और कविता दोनों ही बढ़ती रहीं, कुढ़ती रहीं, उड़ती रहीं।

और एक दिन देखने वालों ने देखा, वे हाई स्कूल की

खरीद दें पास करके बाल्यकाल का कंचुल उतार, यौवन की देहरी पर ऊँची एड़ी के सैण्डल से सज्जित पैर रखती हुई, हाल ही में रङ्गीन-पर-निकली तितलियों की भाँति कालेज के सुसंकृत वातावरण को अपने अज्ञात उन्माद और अस्फुट सौरभ से शराबार करने लगीं। प्रोफेसर से लेकर सहपाठी, सहयोगी तक उनकी तरफ आकर्षित होने लगे। वे कुछ के लिए देखने की, कुछके लिए समझने की, कुछ के लिए अटकने-भटकने की और कुछ के लिए सिसकने-कसकने की चीज बन गईं। हिन्दुस्तान में कन्ट्रोल का युग तो बाद में विश्व-युद्ध के काल में आया, परन्तु कालेज के वातावरण में उससे दस साल पहले ही ऐसा कन्ट्रोल करना पड़ा कि उसमें बहुत से प्रोफेसर और उनके सहयोगी खर्च हो गए। अब आप हमसे पूछेंगे कि आखिर यह है किस कालेज की घटना? तो जनाब, हम दो टूक जवाब देंगे, घटना-वटना कुछ नहीं। यह है महज कहानी। और कहानियाँ हमेशा बेपते की हुआ करती हैं। आपको खोज पता लगाने से कोई सरोकार नहीं, आप सिर्फ कहानी सुनिए।

२

प्रसंगवश हमें रेडियो की यशोगाथा भी सुनानी पड़ी। जहाँ हमारी बहू-बेटियों को इस रेडियो की कृपा से देश की वेश्याओं के 'रसीले तेरे नयना' और 'गरवा लगाय जा' के पुनीत संस्कारपूर्ण गीत-श्रवण करने के सुलभ सुभीते प्राप्त हो गए हैं, वहाँ उन्हें अपनी धज दिखाने और गला दराजी की चौसर खेलने के भी सुअवसर प्राप्त हुए हैं। साहसी तरुणियाँ तो वहाँ के स्टुडियो में मीरासियों के बीच बैठ निश्शंक कोकिल कण्ठ से

'बहियाँ मुरक गई, अँगिया मसक गई' के तराने देश की धुन में गाकर कला को मूर्तिमती करती हैं।

जिनके दिलों में इतना साहस नहीं, वे कविता पाठ करके या 'टाक' पाठ करके या फीचर्स के अभिनय करके अपने प्राईवेट पर्स का खर्च चलाती हैं। और ये रेडियो वाले वाजिद-अली शाह के भतीजे बने चाय की चुस्कियाँ लेते हुए एक-एक की बानगी देखते और प्रसन्न होकर उन्हें सुअवसर देते हैं। और जब शान से बीसवीं शताब्दी की सभ्यता से झुककर उन्हें हरा-सा चेक पकड़ाते हैं, तो मीठे ओठों की मृदु मुस्कान और हँसती आँखों से 'थैंक यू' का मृदु स्पर्श पाकर सोचते हैं—असल तनख्वाह तो यहीं वसूल हो गई। महीने पर जो मिलेगी, वह घाते में।

अब आप इस छोटे से हरे रंग के चेक का जादू भी तो देखिए। इसे हाथ में लेकर जब ये तरुणी बालाएँ हँसती हुई अपने पतियों या पिताओं को दिखाती हैं, तो वे हँस-हँसकर कहते हैं—'देखूँ-देखूँ? कितना मिला?' हाय रे चेक, हाय रे रुपया, हाय रे पूँजी के विषैले साँप, तुझे देखकर तो जैसे मर्दों की मर्दानगी और स्त्रियों का स्त्रीत्व, दोनों ही घपले में पड़ जाते हैं।

छोड़िए इन खरखशों को। सुनिए अब वही सविता और कविता की बात। वे माँ की बेटियाँ कुछ खासुलखास विशेषताएँ धारण करती हैं, खास कर जब वे कालिज की आसामियाँ भी हों। सोचिए तो, बाप गरीब क्लर्क हो, बूढ़ा हो, जवान सौतेली माँ की अर्दली में फँसा रहता हो, तब लड़कियों को देखेभाले कौन? प्रकृति का प्रभाव और उनके चारों ओर का वातावरण ही उन्हें अपनी राह दिखा सकता है। सविता और कविता

भी प्रकृति की उँगली पकड़ कालेज से रेडियो स्टेशन जा पहुँची। सविता ने जिस दिन दिलरुबा के स्वर में स्वर मिला 'अँगिया मसक गई' को देश की धुन में गाया तो देश सिर धुनने लगा। और कविता ने जब 'हिय की पीर जाने कौन' कविता आसावरी के उतार चढ़ाव में उठा ली, तो एक बार रेडियो स्टेशन रु.ख-रित हो उठा। फिर तो प्रोग्राम, कन्ट्रैक्ट और खट से चेक—वही हरा हरा।

सौतेली माँ ने सुना तो मुँह बिचकाया। बूढ़े बाप ने गंजी खोपड़ी सहलाकर कहा—'अच्छा, अच्छा, अब अपने कालेज का खर्च इसी तरह चलाया करो।' सो जनाब, बड़ों की आज्ञा सत्य वचन। अब केवल कालेज का खर्च ही नहीं—साड़ी, सिनेमा लिपस्टिक, पाउडर, जम्पर—पिकनिक सभी खर्च रेडियो ही से चलने लगा। भई वाह, लड़कियाँ आप ही आप निखर्ची पढ़ने लगीं। यह सब बुरा लगा सिर्फ सौतेली माँ को। क्योंकि इस प्रपंच में फँसकर वे घर-गिरस्ती के कामों में तनिक भी उसकी मदद नहीं करती थीं। पर घर-गिरस्ती करे उनकी बला। वे पढ़ती थीं-पढ़ाती थीं, चलती थीं-चलाती थीं, हँसती थीं, हँसाती थीं, गाती थीं-कमाती थी। सौतेली माँ होती कौन है, जिसकी सुनी जाय! बस, सविता और कविता खटाखट न्यू-कट प्लेटफार्म सैन्डल फटकारती कालेज के प्राङ्गण में एक के बाद एक सीढ़ी चढ़ती हुई एम० ए० तक पहुँच अन्त में उसके पार निकल गई। जय गंगाजी की।

३

अब पाण्डेजी की बात। पाण्डेजी अपने परिचित हल्के में ही नहीं, शहर भर में 'साहित्यिक साँड' मशहूर थे। आधे दर्जन

पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक, कविरत्न, दर्जनों सभा-सोसाइटियों के सभापति और कोड़ियों कवि-सम्मेलनों के नियोजक थे। यारों को रसगुल्ला खिलाने और कवियों को विजया पिलाने तथा युवतियों को सिनेमा दिखाने में एक नम्बर! बोलते हँसकर, नमस्ते कहते हाथ जोड़कर। युवतियाँ यदि मनपसन्द हुईं—तो उनके सामने जमनास्टिक की कसरतें करने में भी उन्हें उज्र न था। पन्द्रह साल से रंडुए थे। युवतियाँ, कुमारियाँ झिझकतीं आतीं, परन्तु रसगुल्ले खाकर और रसगुल्लों से भी अधिक मीठी बातें सुनकर परच जातीं। फिर सुनतीं पाण्डे जी का प्रोत्साहन—'आप कविता क्यों नहीं लिखतीं फलानी जी, आपकी सूझ बहुत अच्छी है। आगामी अखिल भारतवर्षीय कवि-सम्मेलन में तो आपको अपनी कविता पढ़नी ही पड़ेगी। क्या करूँ, लोग मानते ही नहीं, मुझे ही सभापति बना दिया है। ही, ही, ही, अच्छा तो आप पहिले मेरे पास कविता भेज दें। डरें नहीं, झिझकें नहीं, शुरू-शुरू में ऐसा ही होता है।......!'

और फिर हुआ अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन। बहार ही बहार थी। पाण्डेजी सर्वेसर्वा थे। कवियों—स्वयंसेविकाओं और चपर-कनातियों ने उन्हें घेर रखा था। यारों को ये कवि का बिल्ला लगा देते थे। बिल्ला क्या था फ्री पास था। उसे साने पर लगाने के बाद बाहर भीतर सर्वत्र जाने का अबाध अधिकार बिल्लाधारी को हो जाता था। बहुत कवि, कवियित्रियाँ इकट्ठी थीं—बचकानी और जवान; विविध कवि पुङ्गव, किसीके बाल लम्बे, किसीकी ढीली धोती, कोई तुक में कोई बेतुक में, सब एक से एक बढ़कर, और सबसे बढ़कर पाण्डेजी। और उनके

पार्श्व में उनकी दोनों आधुनिकतम चेलियाँ—वही सविता और कविता।

भई वाह, क्या-क्या कविताएँ सुनने में आईं, खासकर कविता की कविता। क्या कहने हैं? तालियों की गड़गड़ाहट ऐसी-जैसे बादल गरज रहा हो। और जब उसने मंचपर खड़े होकर चन्द्र-मुख पर क्रीड़ा करती काली नागिन सी एक घुंघराली हठीली लट को बार-बार हटाकर स्लीवलेस जम्पर के नीचे से अनावृत भुज मृणाल ऊँचा कर अनन्त की ओर मुख-पंकज उठाकर 'उर की पीर' की पुकार की, तो सच कहते हैं हम, कि लोग बौखला उठे। फिर भी कुछ अरसिक दहकानी लोग यह सोचते ही रहे-कि न अभी ये ब्याहीं, न बच्चा जना, न गरीबी में पलीं। साइकिल पर लहरातीं, बलखातीं देखने वालों को दहलातीं कालिज आती और जाती रहीं। रेडियो की कृपा से सब जरूरी और गैर-जरूरी जरूरतें पूरी करती रहीं, फिर भला इनके उर में पीर उठी तो किधर से और कैसे?

हाय, हाय, छोड़िए इन सब बातों को। हाँ, तो वही सविता और कविता उस कवि-सम्मेलन के बाद पाण्डेजी की अन्तरङ्ग सखियाँ हो गईं। पाण्डेजी की पत्रिका का मुखपृष्ठ कविता की कविता से सुशोभित रहने लगा। पाण्डेजी की गोष्ठियों में कविता पाठ करती, मुस्काती, शर्माती, वन्समोर शब्द पर अदा से 'नहीं-नहीं—अब नहीं' कहतीं, रसगुल्ले और गर्म समोसे खातीं, चाय की और कभी···अब जाने दीजिए, इन सब बातों को। अब जो कहता हूँ, वही सुनिए।

लोगों ने अचानक सुना, कविता देवी एक ही रात में चुप-चाप श्रीमती पाण्डे हो गईं। यह सुना कि अठन्नी की हवन-

सामग्री और घी और चवन्नी एडमिशन फी देकर दोनों झट से आर्य समाजिस्ट हो गए, और खट से वैदिक रीति से ब्याह कर पति देव और धर्मपत्नी बन गए। एक काने पण्डितजी ने यह असल वैदिक ब्याह सम्पन्न कर रुपैया दक्षिणा और मिष्ठान्न भोजन पाया।

किन्तु ब्याह तो हुआ, पर बिरादरी में तहलका मच गया। भाई-भौजाई, माँ और कुटुम्बियों ने पाण्डेजी को जाति-च्युत कर दिया। पाण्डे जी के चचा घूरनपांडे घर-घर घूमकर कहने लगे—'राम, राम, बीस बिस्वे के पाण्डे होकर न जाने किस कुजात से ब्याह किया।'

पर यारों ने बढ़-बढ़ कर समर्थन किया। भंग छनी, रसगुल्ले उड़े, कवि सम्मेलन हुआ। अब सब जगह नाम छपने लगा—कविता पाण्डे एम० ए०। मजा आ गया! सात पीढ़ी से खानदान में कोई मिडिल पास भी न हुआ था, अब पाण्डेजी कोरे पाण्डे ही नहीं कविता पाण्डे एम० ए० के पति बन गए। समझे सो गधा, अनाड़ी की जाने बला। कवि-सम्मेलनों में जोड़ी जाती। कविता बनती सभा-पत्नी और पाण्डे करते कविता पाठ। समा बँध जाता। लोग ताली बजाते ऊबकर—कि पाण्डे अब बैठ जायं तो और भी लोगों को अवसर मिले। मगर पाण्डे समझते—तारीफ हो रही है। उसी कविता को बार-बार दुहराते-तिहराते, नमस्कार करते। हँस-हँस कर, बल खा-खाकर फिर पढ़ते, और फिर वही पढ़ते, और पढ़ते। कहीं-कहीं धुरपद भी उड़ी और कहीं कहीं अर्धचन्द्र भी मिला। पर बहुत कम।

अब सविता की सुनिए। वह कविता पाण्डे एम० ए० की

इन्डेक्स बनकर उन्हींसे अटैच हो गई। पिता के घर से उसका निष्कासन हो गया। घर-बाहर सभा-सोसाइटिओं में 'टु लेट' के तौर पर सविता भी कविता पाण्डे एम० ए० के साथ दीख पड़ने लगीं। पर भाग्य की रेख भी देखिए। दिन बीते, मास बीते, वर्ष बीते, वर्ष पर वर्ष बीते, कविता ने बच्चा दिया और फिर दिया और फिर दिया। इस प्रकार ८ वर्ष बीत गए पर कोई माई का लाल उस 'टु लेट' के लिए नहीं मिला। बेचारी सविता एम० ए० की डिग्री का बोझ कन्धों पर लिए यौवन के चढ़ाव पर चढ़ कर उतरने भी लगी। उसकी आँखों में निराशा, शरीर में अशोभा, और हृदय में द्वन्द्व सदैव रहने लगा। वह कविता पाण्डे एम०. ए० के गले का भार बन उनके बच्चों को खिलाने और उनके आफिस की क्लर्की करने लगी। उर की पीर जो अब उठी तो एक बारगी ही मूक हो गई। अनन्त की ओर ताकने का अब शायद उसे साहस ही न रहा। रूप की दोपहरी ढली, तो बेचारी निरीह नारी उस ओर से इस ओर को मुँह फेर चली।

४

लेकिन इसी समय सारे जगत में उथल-पुथल मच गई। पृथ्वी जलने लगी, समुद्र झुलसने लगे, नगर ढहने लगे, दुनियाँ तबाह हो चली। मृत्यु और जीवन विश्वप्राङ्गण में आँखमिचौनी खेलने लगे, अनहोनी होने लगी। सिंगापुर का पतन हुआ, फिर हाँगकाँग और बर्मा भी गए। ऐसा जापानियों ने सितम ढाया। विपत्ति, अकाल और अशांति की आग विश्व को तपाती भारत को भी छू गई। बंगाल में दस लाख मनुष्य 'हाय अन्न, हाय

अन्न' करके भूखों मर गए। कलकत्ते की गली-कूचों में लाशें सड़ने लगीं, पतियों ने पत्नियाँ और माताओं ने पुत्र बेच खाए, लोहू और लोहे की ज्वाला लाल लाल जीभ लपलपाती सुदूरपूर्व से भारत को ग्रस लेने के लिए अग्रसर होने लगी। देश के संरक्षक जेलों में भर दिए गए, और सेनाराज्य का नग्न नृत्य निरीह ग्रामवासियों और भद्रजनों ने सहा। मान-संभ्रम, प्राण-धन सब कुछ अरक्षित हो गया। देशों पर विपत्ति, विश्व पर विपत्ति, मानव कुल पर विपत्ति। फिर भी कुछ लोग थे जिनके लिए यह सुअवसर था। वे अपनी थैलियाँ भर रहे थे। उनकी आमदनी का अन्त न था। उनमें कुछ तो भारतीय मुद्रा प्रसार के ध्रुव केन्द्र थे। वे करोड़ों अरबों रुपये समेट कर अपनी छाती के नीचे रख, भूख और लोहा खाकर मरने वालों की ओर हँसकर देख रहे थे। धन उनका माँ, बाप, चाचा, ताऊ, पति और परमेश्वर था।

सेठ छदामीलाल दामड़िया भी उनमें एक थे, मारवाड़ के लाल। दस वर्ष पूर्व लोटा डोर कन्धे पर रख चने बेचने रंगून गए थे। तिकड़म और जमा-मारी से अब वे करोड़ों के स्वामी बन गए थे। अब उनके तीन-तीन जहाज रंगून से कलकत्ता, सुमात्रा, जावा आदि सुदूरपूर्व में चलते थे। करोड़ों का व्यापार फैला था। पर जब हमारी प्रबल प्रतापिनी ब्रिटिश सरकार—जो इन जमामार सेठ-साहूकारों और दुराचारी रईसों की निर्मातृ थी, दुम दबाकर रंगून से पलायमान हो—शतरंज की चाल खेलती हुई शिमला में आ गई, तो इन माई के लालों का कोई धनी धोरी न रहा। जिस दिन रंगून में भगदड़ मची, छदामी सेठ अपना सब कुछ छोड़कर नोटों के गट्ठर गुदड़ी में छिपाए, कहीं

लारी से, कहीं पैदल, बीहड़ और दुर्गम दलदल जङ्गलों में महीनों जीवन-मरण का संग्राम करते हुए, अन्ततः भारतभूमि पर आ पहुँचे। पत्नी, पुत्र, पुत्र-वधु, परिजन कहाँ गए, मरे या जिए, इसका कुछ पता न था। साथ में था एक प्राण और प्राणाधिक नोटों और हुंडियों का पुलिन्दा।

५

दिल्ली के इम्पीरियल बैंक के सामने जब एक घिनौने दीन-हीन चीथड़ेधारी अर्धकंकाल ने करोड़ों की सरकारी हुण्डियाँ और लाखों के बर्मी नोट भुनाने को पेश किए, तो बैंक में मेला लग गया। छोटे से बड़े तक प्रत्येक ने हजार-हजार सवाल किए। अन्ततः सेठ छदामीलाल चोर और उठाईगीर नहीं, यह बैंक ने मान लिया और हुण्डियाँ सरकार दीं। बर्मी नोट भी भारतीय करेन्सी में बदल दिए।

एक ही मास में सेठ छदामीलाल नयी दिल्ली की एक आलीशान कोठी में अपने नवीन मुनीम गुमाश्तों से घिरे लाखों के व्यापार विनिमय की योजना बनाने लगे। विश्व की अर्थनीति का उन्हें व्यवहारिक ज्ञान था, और राजनीतिक विश्व में अर्थनीति कैसे कैसे खेल खेलती है, यह भी वह जानते थे। उन्होंने अपने पूर्व अनुभव के आधार पर, खासकर इस कारण कि उनके दो जहाज अभी भी कलकत्ता की खाड़ी में सुरक्षित थे, सुदूरपूर्व में फैली सम्पूर्ण मित्र सेना के भोजन-वस्त्र-वितरण की जिम्मेदारी ले ली। इसी उपलक्ष्य में एक शानदार भोज वायसराय को दिया और उसी समय तीस लाख की एक थैली

उन्हें घायलों की सेवा के लिए अर्पण की गयी। अब इस बात के वर्णन की कोई आवश्यकता नहीं है कि मित्र सेनाओं को भोजन जुटाने के लिए किस प्रकार सेठ दामड़िया के एजेन्टों ने समूचे भारतवर्ष में गाय, बैल और भैंसों को जिन्दा तौल तौल कर खरीदा, किस प्रकार वैज्ञानिक विधियों से उनका माँस डब्बों में भरा और इस प्रकार मित्रों के मित्र अमेरिकन सैनिकों को उनका प्रिय खाद्य बीफ सप्लाई किया। आज देश के बच्चों को दूध दुर्लभ हो गया, सो हो जाय। गाय, बैल और भैंस अलभ्य हो हो गए हैं, हो जायँ। सेठ की तिजोरी तो भर गई। भगवान् भला करे एटम बम का, जिसने एक ही प्रहार से युद्ध समाप्त कर दिया, नहीं तो एक साल और यदि मित्र सैनिकों को बीफ सप्लाई करना पड़ता, तो भारत से गोधन का बीज ही नष्ट हो जाता।

जो हो। ईश्वर के सम्मुख जो जन्म भर नाक रगड़ते हैं, भिक्षुक ही रहते हैं, परन्तु ब्रिटेन की सरकार की कृपा दृष्टि से हमारे सेठ छदामीलाल दर्जनों फर्मों के मालिक, कई बैंकों के मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर, अनेक मिलों के स्वामी हो गए।

पाण्डेजी से आपकी पुरानी लुटिया-डोर के जमाने की मुलाकात थी। अब, जब से वे कविता पाण्डे एम० ए० के पति हुए, तब से उनमें खूब घुटने लगी। सेठजी कविता के एकाएक प्रेमी हो उठे। श्रीमती कविता देवी की कविता का एक चरण सुनते ही वे झूमने लगते और जब कभी सविता के संगीत की दिलरुबा की तान सुनने को मिलती, तो सेठ जी भाव मग्न हो ऐसी हरकतें करने लगते कि सविता देवी अपनी हँसी न रोक पाने के कारण बेबस होकर मैदान छोड़ भाग खड़ी होतीं। इस पर पाण्डे भी बिगड़ते, कविता भी बिगड़ती। भला क्यों न बिगड़ें?

काम जो बिगड़ता था ? पर सेठ जी हरदम कहते—'यह उम्र ही ऐसी होती है। कोई हर्ज नहीं, कोई हर्ज नहीं।'

६

बात में बात निकली, फिर बात में बात निकली, और सेठ-जी ने इच्छा प्रगट की—कि सेठ जी का अधिकार पूर्ण जीवन-चरित लिखा जाय, और जीवन-चरित्र लिखने के लिए नियुक्त हुई सविता देवी एम० ए०। बीच में बहुत बातें नई पुरानी हुई पर सबसे बड़ी बात हुई 'क्विट इण्डिया'।

जी हाँ, क्विट-इण्डिया बूढ़े महात्मा का चमत्कार। जैसे सत-युग के अन्त में सप्तर्षियों ने नहुष को क्रुद्ध होकर शाप दिया—'सर्प हो जा।' अतर्कित और अकल्पित घटनाएँ होगईं। आसमान तक चढ़ी हुई मूछों को नीची कर घोर पद से चलकर अंग्रेजों ने भारत छोड़ दिया। सर्प की भांति फुफकार कर जिन्ना ने पाकिस्तान बना लिया। और फिर अपने जन्म-जन्म के पापों का हमने भोग भोगा। कितनी कुमारी, नववधु-कुलवधु आबरू खो कर कुएं तालाब में डूब मरीं। कितनी बेटियां और गृहणियों को हमने छत से ढकेल कर, आग में जलाकर, तलवार, विष और रस्सी से फाँसी देकर मार डाला। हमारा ही कायर रक्त हमारी बेटियों और वधुओं के आँसुओं की धार में मिलकर हमारी मान-मर्यादा इज्जत सबको ले डूबा। युग-युग के पापों का लेखा-जोखा बराबर हो गया।

परन्तु इस रक्तपात से अछूते, इस चौधारा आँसुओं से दूर, सेठ छदामीलाल नाक की नोंक पर चश्मा चढ़ाए एक हाथ से

रिश्वत देते और दूसरे से परमिट लेते रहे। पतन से पूरा फ़ायदा उठाया उन्होंने। और लोगों ने देखा—अब सविता देवी जो उनका जीवन-चरित्र लिखने गईं, तो बन गईं उनकी जीवन संगिनी। साधारण नहीं—क्रीता, अपना मूल्य स्वयं ही लेकर।

आप आश्चर्य करते हैं? मूर्ख हैं आप। आप न राजनीति जानते हैं, न अर्थनीति, न एम० ए० पास लड़कियों के कल्चर को। तो आपको हम कहानी क्या सुनाएँ। वही मसल है—

समझे सो गधा।
अनाड़ी की जाने बला।

जेन्टिलमैन

[इस कहानी में आज के युग की सभ्य ठगाई और जुआचोरी का भण्डाफोड़ है। इस कहानी के तथ्य संग्रह करने में विद्वान् लेखक ने उन सब विशिष्ट व्यक्तियों से मुलाकात की थी—जिनके काल्पनिक नाम कहानी में लिखे गए हैं। कहानी लेखक कुछ काल महानगरी बम्बई में वहाँ के बड़े २ सटोरियों, बैंकों और मिलों के मालिकों के सम्पर्क में रहा। और उनके कूट आर्थिक ताने-बाने उसने स्वयं देखे समझे। 'जैन्टिलमैन' के नाम से जिस पुरुष पुङ्गव का उल्लेख किया गया है—वह बम्बई-दिल्ली और लाहौर का एक महान् अर्थशास्त्री था। अपने काल में उसने इन तीनों महानगरों को अपने अर्थविप्लव से हिला डाला था। आचार्य श्रीने उसी के श्रीमुख से उसकी सफल योजनाएँ सुनी थी, तथा बम्बई के मार्केट भी भस्म होता स्वयं अपनी आँखों से देखा था]

१

कहिए, क्या आपने कभी कोई जेन्टिलमैन देखा है ? जेन्टि-लमैन बीसवीं शताब्दि की न्यामत है। वह बीसवीं शताब्दि का मूर्तिमान अवतार है। वह जन्मजात प्रतिष्ठित जन्तु है—उसके बहुत से हथकण्डे हैं। उसमें अच्छी—बुरी जो भी बातें हैं—गुण ही गुण हैं। अवगुण को उसने शब्दकोष से बहिर्गत कर दिया है। वह जगन्वन्द्य महापुरुष है। उसके लिए बीसवीं शताब्दि में सब कुछ गम्य है।

जेन्टलमैन को पहिचानना बहुत कठिन है। पर आप जब किसी आदमी को सिर से पैर तक साहिबी ठाट से भरपूर देखें, जिसकी मूछें या तो सफाचट हों या दीमक-चट। जो बात-बात में मुस्कुरा कर नम्रता से 'थैङ्क यू' कहे। स्त्रियों के, खास कर युवतियों के सामने बाक़ायदा जमनास्टिक की कसरत दिखाए, मुँह से धुँआ उगलता रहे, बस समझ लीजिए, अदबद कर वही जेन्टलमैन है।

सतयुग के अन्त में सत्तासी हज़ार ऋषियों के बीच महाज्ञानी श्रीकाकभुशुण्डी जी महाराज ने जैन्टलमैन का इस प्रकार वर्णन किया था कि हे ऋषियो, कलियुगमें एक जेन्टलमैन नाम का जीव जन्म लेगा। वह सब पदार्थों का भक्षण करेगा, उसे धर्म और नीति का भय न होगा, वह परमेश्वर की शक्ति से इन्कार कर देगा, उसके लिए कुछ भी अशक्य न होगा, वह कामवेशी होगा, वह केवल झूठ बोलेहीगा नहीं—झूठे काम को सत्य करके दिखाएगा। उसका शस्त्र फाउन्टेनपेन होगा। लोक-लिहाज से बचने को और शील से आँखों की रक्षा करने के लिए वह सुनहरी कमानी का चश्मा आँख पर चढ़ाए रहेगा। उसका युद्धस्थल दफ्तर होगा। वह काग़ज़ के घोड़े पर सवार होकर भूमण्डल पर विचरण करेगा। उसकी जमापूँजी सब ज़बान में होगी। वह पराए धन का महायज्ञ करेगा। उसका रक्षा-कवच लिमिटेड कम्पनी होगा। वह अख़बारों की तोप से मदद लेगा। उसके पास कुछ भी न होगा, फिर भी वह लाखों रुपए ख़र्च सकेगा। वह क़ानून का पुतला होगा, इसलिए क़ानून उसका कुछ न कर सकेगा। वह महात्यागी और महास्थितप्रज्ञ होगा, हानि-लाभ में एकरस रहेगा। हे ऋषियो, वह बीसवीं शताब्दी का एक

विभूति-रूप होगा। जो कोई उसका दर्शन करेगा या जिसका उससे सम्बन्ध होगा, उसका महा–कल्याण हो जायगा।

२

दिल्ली स्टेशन के ईश्वरदास के हिन्दू रेस्टोराँ में एक जेन्टलमैन बैठे मुँह से धुँआ उगल रहे थे। इनके आगे ब्रान्डी का गिलास और बर्फ, सोडा आदि सामान धरा था। जेन्टलमैन महाशय छत पर सरसराते पंखे पर नज़र जमाए धुँआ फेंक कर मानों पंखे पर जादू सा कर रहे थे।

थोड़ी देर बाद तीन व्यक्तियों ने रैस्टोराँ में प्रवेश किया। जेन्टलमैन ने कुर्सीसे उठकर उनमें से एक व्यक्ति की ओर हाथ बढ़ा कर कहा:—हलो मिस्टर दास हियर यू आर।

दास ने हाथ मिलाते हुए मुस्कराकर अपने मित्रों का परिचय देते हुए कहा—

"आप मेरे परम मित्र सेठ लक्ष्मीदास राजोडिया, और आप मेरे पुराने सहपाठी डा० सिन्हा साहेब!"

जेन्टलमैन ने बारी-बारी से दोनों से हाथ मिला कर कहा—आप साहबान से मिलकर अजहद खुशी हुई, बैठिए।'

सबके बैठने पर जेन्टलमैन ने बैरा से संकेत किया। आननफानन चाय-केक-टोस्ट-अण्डा और न जाने क्या-क्या अगलम् बगलम् टेबिल पर चुन दिया गया। तीनों दोस्त हाथ साफ करने लगे। सिर्फ सेठ जी कोरे रह गए, बहुत आग्रह करने पर भी उन्होंने किसी वस्तु को नहीं छुआ।

बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ। मिस्टर दास ने कहा 'मेरे परम मित्र सेठ साहेब को इधर शेअर और रुई में बहुत

नुकसान हुआ है। ये बम्बई के करोड़पति व्यापारी हैं। इन्हें आप कोई ऐसी युक्ति बताइए कि पौ-बारह हो जाय।' जेन्टलमैन ने चश्मे के भीतर से पहले सेठजी को और फिर मिस्टरदास को घूर कर एक घूँट चाय पीकर कहा—'यह कौन मुश्किल बात है साहबान, मैं एक जेन्टलमैन हूँ और आप जानते हैं, जेन्टलमैन दोस्तों के लिए जान को भी कुछ चीज़ नहीं समझता'।

मिस्टरदास—बेशक, आप इस वक्त सेठजी को कोई ऐसी युक्ति बताएँ कि कुछ लाभ हो। सेठजी आप से कभी बाहर नहीं हो सकते।

जेन्टलमैन ने गम्भीर होकर कहा—'वाह' "यह भी कोई बात है, क्या दोस्तों से भी मुआवज़ा लिया जायगा?"

सेठजी ने दाँत निकाल कर कहा-'इसमें मुआवजे की क्या बात है? पर मित्रों की शक्ति भर सेवा करना भी तो मित्रों का फर्ज है।'

जेन्टलमैन ने शिष्टाचार की भावभंगी प्रकट करने के बाद कहा—'खैर, तो आप एकदम कोई बड़ी रक़म जेब में डालना चाहते हैं या माहवारी आमदनी बढ़ाना चाहते हैं?'

सेठजी जवाब देने में संकोच करने लगे, इतने में डा० सिन्हा ने कहा—'अजी दोनों, और ज़रा इस दोस्त का भी ख्याल रखिए। सेठजी को बड़ा और मेरे लिए एक छोटा सा नुस्खा तजवीज़ कर डालिए'। सिन्हा साहब यह कहकर हँस दिए। परन्तु जेन्टलमैन महाशय कुछ देर तक गम्भीरता से सोचने के बाद बोले—"आपने कहा था न कि आपकी बम्बई में काफी जायदाद है?"

"जी हाँ, एक कपड़े का मार्केट मेरी निजू सम्पत्ति है। परन्तु उसके किराए की आमदनी बहुत कम है।

'कम ? अजी बम्बई में किराया कम ? आप यह क्या फर्माते हैं ?"

"शायद आपको मालूम नहीं कि बम्बई में एक ऐसा क़ानून बना हुआ है कि सन् १६१६ से प्रथम के जो किरायेदार हैं, उन्हें न मालिक निकाल सकता है न किराया बढ़ा सकता है वे मकान के मोरूसी मालिक बने बैठे हैं।' सेठजी ने गम्भीरता से कहा।

"ठीक, परन्तु सन् सोलह और अब के किरायों में तो ज़मीन आसमान का अन्तर है ?" जेन्टलमैन ने सेठजी की आँख से आँखें लड़ाकर कहा।

"बेशक, सन् १६ में जो मकान ५०) रुपये किराए का था और अब तक है, नया किराएदार उसके ३००) रु० किराया दे सकता है, अफसोस तो यह है कि किराएदार तो हजारों रुपये पगड़ी लेकर दूसरों को मकान किराए पर दे सकते हैं, परन्तु मालिक मकान नहीं! असल में मालिकों की मौत है ?" यह कहकर सेठ जी ने ठंडी सांस भरी।

जेन्टलमैन ने चाय का घूट पीते हुए कहा—"क्या किसी रीति से भी मकान खाली नहीं कराया जा ?"

"एक ही हालत में, यदि मकान को गिराकर फिर से बनाने का म्युनिसिपैलिटी नोटिस दे।"

"हूँ समझा "—जेन्टलमैन ने भ्रकुटी में बल डालकर सिर हिलाया। फिर कहा—"क्या आपको यक़ीन है कि आपका सब मार्केट खाली हो जाय तो आपको नए किराएदार तुरन्त मिल जायेंगे ?"

"वाह ? मिल जाएँगे क्या ? तुरन्त मेरी अस्सी हजार रुपए महावार की आमदनी बढ़ जायगी।'

अस्सी हजार रुपए माहवार की ?"

"जी हां।"

कुछ देर मि० जेन्टलमैन ने सोच कर कहा—'क्या आप एकाध दूकान मुझे दे सकते हैं ?"

"मैं आपको तीन दूकानें दे सकता हूँ, वे मेरी अपनी दूकानें हैं !"

"क्या वे सब कपड़े की हैं ?"

"जी हाँ ?"

"उनमें कितना माल है ?"

"लगभग एक लाख रुपए का। हम लोग गोदाम अलग रखते हैं।"

"ठीक, आपको अगले वर्ष मार्च महीने से यह अस्सी हजार रुपए माहवार की नई आमदनी मिलने लगेगी ?"'

"क्या आप सच कह रहे हैं ?"

"झूठ से फायदा ?"

"यदि ऐसा हुआ तो मैं आपको नकद दस लाख रुपए दूंगा।"

जेन्टलमैन ने हँस कर कहा—देखा जायगा। हाँ, आप एक मुश्त भी तो कुछ रकम चाहते हैं !"

"जी हाँ चाहता तो हूँ !"

"एक करोड़ रुपया काफी होगा ?"

"क्या आप मजाक कर रहे हैं ?"

"नहीं, यह रुपया आपको आज से तीन मास के अन्दर मिल जायगा।"

सब मित्र आश्चर्य-चकित थे। जेन्टलमैन ने चाय का प्याला आगे को सरका कर उठते हुए कहा—"अच्छा अब गुडबाई, मैं आपको एक हफ्ते बाद बम्बई में मिलूँगा, मि० दास भी साथ होंगे। और मिस्टर सिन्हा, आपका छोटा सा नुस्खा भी वहीं लिख दिया जायगा।"

जेन्टलमैन सबको आश्चर्य-सागर में गोता लगाते छोड़, सब से हाथ मिला, मुस्कुराते हुए चल दिए। तीनों मित्र भी अपनी राह लगे।

३

एक सप्ताह बाद चारों मित्र बम्बई में सेठ जी के एकांत कमरे में बैठे थे। चाय और जलपान उनके सन्मुख था। सबकी दृष्टि जेन्टलमैन के मुख पर थी। जेन्टलमैन ने गम्भीर मुद्रा से कहा—"देखिए सेठजी, आप क्या सोलह आने मेरा विश्वास करते हैं?"

"करता हूँ।"

"तब आप बचन दीजिए कि मैं जो कहूँगा आप करेंगे।"

"ऐसा ही होगा।"

"मैं आशा करता हूँ कि हमारे दोनों मित्रगण भी हमारे उद्योग में सम्मिलित रहेंगे और लाभ उठाएँगे?"

दोनों ने उत्सुकता से कहा—"अवश्य।"

जेन्टलमैन ने मुस्कुरा कर कहा—डा० सिन्हा साहेब का छोटा सा नुस्खा उसी में बन जायगा।"

डाक्टर ने हँस कर कहा—"यह तो बहुत ही अच्छी बात है।"

"खैर, तो आप तैयार हैं, मैं काम शुरू करूँ ?"

"कीजिए !"

"बहुत अच्छा। अपनी वे तीनों दुकानें मय माल के मेरे दोस्त मि० दास और डा० सिन्हा को बेची कर दीजिए। रुपया भरपाई की रसीद भी दे दीजिए और समझ लीजिए कि यह आपका एक लाख रुपया जलकर खाक हो गया। कहिए आपको पेशोपेश तो नहीं ?"

सेठ जी घबराकर जेन्टलमैन की तरफ देखने लगे। उन्होंने कहा—"आप अपना उद्देश्य तो कहिए ?"

"जनाब, मैं किसी के सामने कभी कैफियत नहीं देता।"—ये अपना टोप सम्हाल कर उठने लगे।

सेठ जी ने अनुनय से कहा—"आप तो नाराज हो गए। आप जानते हैं, लाख रुपए की जोखिम है। सोचने की जरूरत है।"

"आप करोड़ों रुपये योंही पैदा करना चाहते हैं ? जाइए, सोच-सोच कर जान खपाइए, मैं चलता हूँ !"

सेठ जी ने उनका हाथ पकड़ कर कहा—"अच्छा मुझे मंजूर है। और कहिए ?"

"जेन्टलमैन ने जेब से एग्रीमेन्ट का ड्राफ्ट निकाल कर कहा—इस पर दस्तखत करके यह काम खत्म कर दीजिए।" सेठ जी ने दस्तखत कर दिए।

उस कागज को जेब में डाल कर जेन्टलमैन ने कहा—"यह एक काम हुआ। अब दूसरा काम यह; कि आप तमाम मार्केट

का एक करोड़ रुपए का आग का बीमा करा डालिए।

सेठ जी ने भयभीत दृष्टि से जेन्टलमैन को घूर कर कहा—"आपका इरादा क्या है?"

"यही, कि मैंने जो कहा है उसे पूरा कर दिखाऊँ। कल मि० दास आपसे दूकान का चार्ज लेने जाएँगे और कल ही आप बीमा की भी कुल कार्यवाही खतम कर डालेंगे।"

सेठ जी ने स्वीकार किया।

जेन्टलमैन ने भेद-भरी दृष्टि से देखते हुए सेठ जी से कहा—

"डॉ० सिन्हा की राय है कि इधर आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, आप सपरिवार काश्मीर एक दो मास के लिए चले जाइए। कल आप सब काम खत्म करके परसों फ्रन्टियर मेल से रवाना हो सकते हैं।"

सेठ जी ने घबराकर कहा—"स्वास्थ्य तो मेरा बहुत अच्छा है, और मैं अभी पंजाब से आ रहा हूँ।"

जेन्टलमैन ने तीखी वाणी से कहा—"परन्तु डॉक्टर की राय के मुकाबले आपकी राय कुछ गिनती में नहीं है। फिर आप मुझे वचन दे चुके हैं। आपको मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिए।"

सेठ जी ने धीमे स्वर में कहा—"आपका इरादा मैं कुछ र समझ गया हूँ। आप बड़े खतरे का काम कर रहे हैं।"

"समझ गए हैं तो अच्छी बात है, खतरों से हम नहीं डरते। आपको खतरों से दूर रखने ही के लिए मैं आपको भेज रहा हूँ।"

"अच्छी बात है, मुझे स्वीकार है।"

जेन्टलमैन उठ खड़े हुए, तीनों मित्र भी उठे। जेन्टलमैन

ने हाथ बढ़ाते हुए सेठ जी से कहा—"अब स्टेशन पर परसों आपसे मुलाकात होगी। बीमा के कागजात अपने सॉलीसीटर को दे जाइए और एक परिचय-पत्र मेरा उनके नाम लिख कर मुझे देते जाइए, आवश्यकता होने पर मैं उनसे मिल लूँगा।"

इतना कह मित्रों सहित जेन्टलमैन बिदा हुए। सेठ जी घबराहट के मारे कमरे में टहलने लगे।

४

तीनों मित्र एक होटल के एकान्त कमरे में बैठे थे। दास ने कहा—"क्या आज ही ?"

"हाँ, तुमने कहा न, कि दूकान की उघरानी का डेढ़ लाख रुपया आ गया है।"

"पर वह उघरानी का नहीं, आढ़तियों की रकम है।"

"ओह ! इससे कोई बहस नहीं, उसका पेमेंट दूकान कर देगी। लाओ, वे रुपये कहाँ हैं ?"

दास ने नोट निकाल कर सामने रख दिए। उसमें से दस हजार के नोट मि० सिन्हा के हाथ पर रखते हुए मि० जेन्टलमैन ने कहा—"मि० सिन्हा, यह आपका वह छोटा सा नुस्खा है।" और चालीस हजार मि० दास को देकर कहा—"यह आपका डेढ़ महीने का वेतन है ?" शेष एक लाख जेब में रख कर बोले—"दूकान में माल कितना होगा ?"

"अस्सी हजार का होगा ही।"

"जाने दो। हाँ, तो मि० सिन्हा, मतलब समझ गए न ? बिजली का करेन्ट ऑफ करके बीच में तार को काट कर नङ्गा कर दो और परस्पर मिला दो।"

"यह तो बहुत मामूली काम है"—सिन्हा ने कहा।

"बेशक, परन्तु यह लीक लकड़ी के सितून के ऊपर करना होगा, जिससे तार जलते ही आग झट से बैठ जाय।"

"ऐसा ही होगा।"

"तब आप जाइए और अपना काम खतम करके चले आइए।"

"क्या स्विच स्टार्ट कर आऊँ?"

"तब क्या? सब कुछ आज ही होना चाहिए, और मि० दास, तुम अपनी पार्टी को तैयार रक्खो। याद रक्खो यह मामूली घटना न होगी, शहर में तहलका मच जायगा।"

मि० दास ने भयग्रस्त होकर कहा—"मि० जेन्टिलमैन, सावधानी से सब बातों पर विचार करलो, जल्दी न करो। बड़ा भयानक काम है।"

जेन्टिलमैन ने उठते हुए कहा—"अब हम तीनों रात के साढ़े बारह बजे बाजार के मोड़ पर मिलेंगे। उस समय तक वहाँ आदमियों की भारी भीड़ लग चुकी होगी। ठहरो, जगह ठीक कर लेनी चाहिए। वह जो रेस्टोराँ है वहीं। पर खबदार, हम लोग पृथक् २ टेबिलों पर बैठे होंगे।

तीनों मित्रों ने नेत्रों में विचार-विनिमय किया, और तीनों अपनी-अपनी राह लगे।

५

कपड़े के मार्केट में आग लगाना एक प्रलयङ्कारी दृश्य था। घनी बस्ती के बीच में यह मार्केट था। कुल मार्केट में आठ सौ कपड़े की दूकानें थीं। मनुष्य और माल से भरपूर। उनमें करोड़ों का माल भरा था। मार्केट में आग लग जाने की खबर बात की बात में नगर भर में फैल गई। सभी स्थानों की आग बुझाने

वाली गाड़ियाँ आ गई। नगर भर की पुलिस और घुड़सवार पल्टनों का बन्दोबस्त हो गया–परन्तु मि० दास की पार्टी पर सब भेद प्रकट था। वह ठीक स्थानों पर पहुँच गई थी। तिजोरियों को तोड़ने की व्यवस्था उनके साथ थी और, जब सर्वत्र हाहाकार मचा था, फायर बिग्रेड वाले पुलिस और सेना की सहायता से माल को निकालने और आग बुझाने में जान जोखिम सह रहे थे, मि० दास की पार्टी अनगिनत नोटों के गट्ठर बटोर रही थी। पास के रेस्टोराँ में तीनों दोस्त क्षण-क्षण में सूचना पा रहे थे।

आग बुझाने में आठ दिन लगे। सारा मार्केट जल कर राख हो गया। दूकानदार हाय करके बैठ रहे। जिनका बीमा था—उन्हें कुछ सन्तोष था। यह दारुण समाचार सुनते ही सेठ जी काश्मीर से भाग आए। खाक स्याह मार्केट को देखकर जोर-जोर रोने लगे। लोगों की भीड़ चारों तरफ जमा थी! कोई कुछ कह रहा था–कोई कुछ। सेठ जी को सब करुणा की कोर से देख रहे थे। लोगों के मन में दया का समुद्र उमड़ रहा था। सहानुभूति के शब्दों की बौछार हो रही थी। सेठ जी सुबकियां ले रहे थे। तीनों मित्र बगल में खड़े थे। मि० जेन्टलमैन मुस्कराते हुए सिगरेट पी रहे थे। एकाएक उन्होंने सिगरेट फेंककर सेठजी का कन्धा छूकर कहा—"अब रंज-फिक्र छोड़िए सेठजी, आगे की बात सोचिए। जो होना था हो गया।" उन्होंने एक भेद-भरी दृष्टि सेठजी पर डाली। चारों दोस्त चले आए। घर के एकान्त कमरे में बैठकर सेठजी ने कहा—"अब ?"

"अब क्या—? एक करोड़ रुपए बीमे का वसूल कर लीजिए,

और झटपट नये डिजाइन का एक भव्य मार्केट बनवा डालिए। आनन-फानन में भर जायगा।"

इसके बाद कुछ गोपनीय परामर्श करके मिस्टर जेन्टलमैन बाहर आए।

६

नया मार्केट बन गया। उसमें सिर्फ चालीस लाख रुपया खर्च हुआ। साठ लाख रुपया सेठ जी को बच गया। इधर एक लाख रुपया महीना किराया आने लगा। मि० जेन्टलमैन को इस धन्धे में लूट की बेशुमार दौलत के अलावा दस लाख रुपया सेठ जी से इनाम मिला। अब वे गुड़ पर चींउटे की भाँति चिपक रहे थे। सेठ जी उनकी योग्यता के कायल थे। दोनों दोस्त भी चूर-चार से पेट भर रहे थे।

चारों दोस्त बैठे थे। नन्हीं-नन्हीं बूँदे पड़ रही थीं। मेज पर चाय और खाने की वैष्णवी चीजें धरी थीं। सेठजी बोले—"मिस्टर जेन्टलमैन, कुछ नया धन्धा किया जाय। जिससे दस-बीस लाख फोकट में पैदा हो जाय।"

मिस्टर जेन्टलमैन ने हँसकर कहा—"कौन बड़ी बात है। यह रुपया कब-तक आपको चाहिए?"

"ज्यादा से ज्यादा दो महीने में। गर्मी शुरू होने पर तो काश्मीर जाने का इरादा है।"

"अच्छी बात है।" उन्होंने जेब से फाउन्टेनपेन निकाल कर नोटबुक का एक पन्ना फाड़ कर कहा—"सेठजी, कल्पना कर लीजिए कि हम लोग एक लिमिटेड कम्पनी बनाने जा रहे हैं, जिसका मूलधन पचास लाख होगा। उसमें रेशम काता जायगा।

यह बड़े मुनाफे का धन्धा है। आप सेठजी, दस लाख के शेअर खरीद लीजिए।"

सेठजी ने अकचका कर कहा—"क्या मैं?"

"जी हाँ"—"फिर उन्होंने नोटबुक में कुछ लिखते हुए कहा—और मिस्टर दास, पाँच-पाँच लाख का हिस्सा हम तीनों का हुआ। लो, आधे शेयर तो बिक गए। पाँच लाख के शेयर रिज़र्व रखते हैं, सिर्फ बीस लाख के बेचने हैं। एक सौ के शेअर होंगे, तीन क़िस्तों में रुपया लिया जायगा! एक चौथाई पेशगी। निकालिए चिक, एक चौथाई रुपया अभी दे दीजिए।

मिस्टर जेन्टलमैन अपनी नोटबुक में लिखते जाते थे, और बात करते जाते थे। दोनों मित्र हैरान थे। सेठजी एक-टक देख रहे थे। मित्रों को पशोपेश करते देख मि० जेन्टलमैन ने कहा—"यारों घबराते क्यों हो, आप लोगों की एक पाई भी तो खर्च नहीं होगी।"

उन्होंने स्वयं सवालाख का चिक काटकर सामने फेंक दिया। सेठजी और मित्रों ने भी चिक काट दिए। सवाछै लाख के चिक हो गए। उन्हें रद्दी कागज के टुकड़ों की भांति मि० दास के आगे फेंक कर उन्होंने कहा—"मि० दास, आप इस कम्पनी के मेनेजिंग डाइरेक्टर हुए। हजार रुपये माहवार आपको तनख्वाह मिलेगी। आप मेरे सॉलीसीटर के यहाँ चले जाइए, वे कुल कागज़ात तैयार करके कल ही कम्पनी रजिष्ट्री करा देंगे। फिर आप एक अच्छी जगह पर ऑफिस किराए पर ले डालिए। अब हम पहिली डाइरेक्टरों की मीटिंग होने पर फिर मिलेंगे।"

मि० जेन्टलमैन उठ खड़े हुए। दोनों मित्र भी उठ चले।

मिस्टर दास से चलती बार उन्होंने कहा—"घर पर आना, मैं सब समझा दूँगा।"

७

'धनजी सिल्क स्पिनिंग कम्पनी लिमिटेड' का पाटिया उसी सप्ताह दफ्तर में लग गया। आवश्यक मेज कुर्सियाँ भी बिछ गईं। कागजात भी छप गए। आफिस में मिस्टर दास और मिस्टर जेन्टलमैन बैठे थे। थोड़ी देर में डाक्टर सिन्हा भी तशरीफ ले आए।

उनके आते ही मि० जेन्टलमैन ने कहा—"मिस्टर सिन्हा, अब आपको सब कुछ करना पड़ेगा। सुनिए, आपको तीस-चालीस आदमी निरन्तर शेअर बाजार में भेजने पड़ेंगे, जो चाहे भी जिस भाव पर हमारी कम्पनी के शेअर खरीदेंगे। मि० दास आपको पचास हजार रुपये रोज देंगे। यह आपके आदमियों का काम है कि वे कम से कम पचास हजार रुपये रोज के शेअर खरीद लाएं।"

"आप समझ गए न, मि० दास?"

"समझ तो गया, परन्तु रोज पचास हजार रुपया दूँगा कहाँ से? और कब तक?"

मिस्टर जेन्टलमैन ने मुस्कराकर कहा—"वाह, ये रुपए तो रोज ही आपके पास लौट आएँगे। सिर्फ दस-पाँच की कमी-ज्यादती रहेगी?"

"यह किस तरह?"

"इस तरह" कि जब मि० सिन्हा के आदमी शेअर बाजार में अपनी कम्पनी के शेअरों को खरीद करेंगे, शेअर बाजार वाले अवश्य ही आपको फोन करके शेअर खरीदकर रखेंगे तथा बेचेंगे-

वे सब रुपए आपको मिलेंगे। सिर्फ आप उन लोगों को दलाली देंगे। यह आप उनसे तय कर लीजिएगा।"

मि० दास हँसकर बोले—"यह तो समझ गया। परन्तु इससे हमें क्या लाभ होगा?"

"यह खेल दस-बीस दिन चलता रहेगा। दिन-दिन नए-नए ग्राहक मि० सिन्हा बाजार में भेजते रहेंगे। जब बाज़ार में यह प्रसिद्ध हो जायगा कि अमुक कम्पनी के शेअरों की बाज़ार में बहुत खपत है, तब आप बाज़ार में शेअर भेजने से इन्कार कर दीजिए, और प्रकट कर दीजिए कि अब बेचने के लिए शेअर नहीं हैं।"

"इसके बाद?"

'इसके बाद, मि० सिन्हा के आदमी तो बाजार में सरगर्मी से फिरते ही रहेंगे—वे एक सौ पाँच तक में शेअर ख़रीद करने को तैयार हो जाएंगे।'

'तब?'

'बस, ज्योंही शेअर का बढ़ा हुआ भाव बोर्ड पर चढ़ा और बाहरी ग्राहक टूटे। लोग मूर्ख तो हैं हीं। यह कोई नहीं पूँछता कि कौन कम्पनी कहाँ है, उसकी क्या हालत है। बस जिसके शेअर की दर बढ़ गई—उसी पर टूट पड़ते हैं। बस हम लोग आपस में ही एकसौ दस-एकसौ पच्चीस तक बाज़ार-भाव कर देंगे। और जब देखेंगे कि बाहरी आदमी खरीद रहे हैं, अपने तमाम शेअर बेच डालेंगे।"

मि० दास की आँखें चमकने लगीं। उन्होंने कहा—"बाहरी आदमी क्या अन्धे हैं जो बिना देखे-भाले अपना रुपया फेंक देंगे?

"अन्धे? आप अन्धे कहते हैं, मैं कहता हूँ वे उल्लू के

पट्टे हैं। आपको यह भेद मालूम नहीं। यह तो आप जानते हैं कि बम्बई का सट्टा जगद् विख्यात है, और सब लोग जानते हैं कि बम्बई के अमीरों का एकमात्र धन्धा सट्टा है। जो लोग ज़रा अपने को चालाक समझते हैं वे बम्बई में आकर खर्च बना लेने की फिक्र में रहते हैं। यहाँ के यार दोस्त उन्हें रुई, सोना या शेअर का सट्टा करने की सलाह देते हैं। शेअर के बाज़ार में यह आम क़ायदा है कि कम्पनी क्या है, है भी या नहीं, इसे कोई नहीं देखता। जिस कम्पनी के शेअरों का बाजार में भाव बढ़ गया, लोग समझते हैं वह खूब नफ़ा कमा रही है, उसी के शेअर आँख बन्द कर खरीद लेते हैं। बाजार में मि० सिन्हा ऐसी रेल-पेल मचा देंगे कि हमारी कम्पनी का शेअर वहाँ गया नहीं और ऊँचे भाव में बिका नहीं। बस लोग हाथों-हाथ खरीदने लगेंगे और हम अपने अपने शेअर बेंच डालेंगे।"

मि० दास ने आँखें फाड़कर मि० जेन्टलमैन को घूरकर देखा और कहा—"और कम्पनी का काम कब स्टार्ट होगा? मशीनरी कहाँ से आएगी। बिल्डिंग भी तो बनेगी?"

मि० जेन्टलमैन ने कुटिल हास्य से कहा—"उसकी कोई ज़रूरत नहीं। ज्योंही हमारे शेअरों का रुपया हाथ लग जाय, कम्पनी दिवालिया हो जाएगी।"

मि० सिन्हा उछल पड़े। उन्होंने कहा—"वन्डरफुल। मैं सब कुछ समझ गया मि० दास, मैं तुम्हें सब समझा दूँगा? आओ, हाथ मिलाओ दोस्त।"

तीनों ने हाथ मिलाया, परस्पर भेद-भरी दृष्टि से देखा और अंतरङ्ग सभा विसर्जित की।

८

नीलगिरि पर्वत की भव्य श्रेणी पर चारों दोस्त एकत्रित थे। अंगरेजी होटल के एक ठाठदार कमरे में चारों दोस्त टेबिल पर बैठे थे। सेठजी ने कहा–मि० जेन्टलमैन, आपकी सूझ-बूझ का मैं क़ायल हो गया, आपका दिमाग़ सचमुच हीरा है।"

मि० जेन्टलमैन ने कहा—"सेठजी, आपने विश्वास किया और फल पाया। याद रखिए, मैं एक जेन्टलमैन हूँ, जो कहता हूँ, कर दिखाता हूँ।"

'बेशक आप एक सच्चे जेंटलमैन हैं।' सेठजी ने विश्वस्त स्वर में कहा।

मि० जेंटलमैन ने सिगरेट का कश फेंक कर कहा—'कहिए मि० दास, इस सौदे में कितना नफ़ा रहा?'

"दो लाख सेठजी को मिले और एक लाख बाईस हजार हम तीनों में से प्रत्येक को मिले।"

'अब मेरा प्रस्ताव है सेठ जी—कि ये तो छोटे-मोटे व्यापार हुए। आप चाहें तो मैं करोड़ों रुपया आपके चरणों में डाल सकता हूँ।"

"मैं हर तरह आपके आधीन हूँ। आप कहें तो कुएँ में कूद पड़ूँ।"

"वाह, क्या मैं आपको कूएँ में उतारूंगा?" जैन्टलमैन जोर से हँस पड़े। इसके बाद उन्होंने कहा–"सुनिए, इस समय देश–भक्ति और देश–सेवा की आवाज़ देश में गूंज रही है।" तीनों मित्र ध्यान से सुनने लगे।

मि० जेंटलमैन ने कहा—देश भर में महादरिद्रता का राज्य है, परंतु इसका कारण यह नहीं कि देश में धन नहीं। देश में

बेशुमार धन है। परंतु उसका विषम वितरण हो रहा है। कुछ लोग बहुत ज्यादा अमीर हैं, बाकी सब बहुत ग़रीब हैं।"

तीनों मित्र सन्नाटा खींचे बैठे थे। जेन्टलमैन बोले—"इस समय यदि हम कोई ऐसा काम करें कि देश के दीन-दुखियों का भी भला हो—ग़रीबों को सहारा मिले—सर्वसाधारण के धन का सदुपयोग हो, तो कितना अच्छा है?"

सेठ जी जोश में आकर बोल उठे—"बहुत अच्छा, आप यदि कोई अनाथालय या ऐसी ही संस्था खोलना चाहें तो मैं आपको जितना आप चाहें धन दे सकता हूँ। विश्वास कीजिए।"

मि० जेन्टलमैन ने होंठ सिकोड़ कर कहा—"सेठजी, मैं उन बेवकूफ़ों से कुछ दूसरे ढंग का आदमी हूँ, जो अनाथालय और धर्मशालाएँ बनवाते हैं। मेरा तो प्रस्ताव ही कुछ और है।"

"वह क्या है?"

'हम एक बैंक, राष्ट्रीय बैंक स्थापित करेंगे।'

तीनों मित्र अत्यंत गम्भीर हो गए। वे आँखें फाड़-फाड़ कर इस अक्ल के पुतले को देख रहे थे।

मि० जेन्टलमैन ने खूब गम्भीर होकर कहा—"हमारे प्रस्तावित बैङ्क का मूलधन दो करोड़ रुपया होगा। इसमें पचास लाख रुपया सेठ जी का तथा दस दस लाख रुपया हम तीनों आदमियों का लगेगा। सेठ जी बैङ्क के मैनेजिंग डाइरेक्टर होंगे। बाकी हिस्से हम आनन-फानन में बेच डालेंगे। इस बैङ्क में हम ज्यादा से ज्यादा सूद पर लोगों की रक़में जमा करेंगे और रुपये को राष्ट्रीय उद्योग-धन्धों में लगाएँगे। व्याज कम से कम लेंगे। यह देश के रुपए का देश के हित के लिए सदुपयोग करने का सबसे भारी काम होगा।"

सेठजी ने सहमत होते हुए कहा—"मैं सहमत हूँ, परन्तु मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर की जिम्मेदारी नहीं ले सकता। यह काम आप स्वयं करें तो काम की सफलता की पूरी-पूरी आशा है।"

मि० दास ने भी इसका समर्थन किया और मि० सिन्हा भी सहमत हो गए। मि० जेन्टलमैन सर्व-सम्मति से बैंक के मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर नियुक्त हो गए। वेतन तीन हजार मासिक और रहने का स्थान, यथेष्ट भत्ता, दस साल का कन्ट्राक्ट। मि० दास सेक्रेटरी, वेतन एक हजार रुपया और सुविधाएं। सब बन्दोबस्त ठीक कर, नियमोपनियम बना, नीलगिरी की ठण्डी हवा खा चारों मित्र अपने नये व्यवसाय को चलाने बम्बई में आ धमके।

६

बैंक का नाम रखा गया 'व्यापार बैंक लिमिटेड।' मि० जेन्टलमैन के परिश्रम, दौड़-धूप, और अध्यवसाय से बैंक की थोड़े ही दिन में धाग जम गई। कई बड़े-बड़े बैंकों तथा सरकारी संस्थाओं से उसके सम्बन्ध जुड़ गये। सेठ जी सुन-सुन कर, देख-देख कर प्रसन्न होते थे। वे बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स के प्रसीडेण्ट थे। और इसके लिए नक़द पाँच हजार रुपया मासिक वृत्ति उन्हें मिलती थी। पर वे सोलह आने मि० जेन्टलमैन के इशारे पर नाचने वाले थे। बाकी दोनों मित्र भी उन्हीं के चेले थे। मि० सिंहा बैंक के एजेन्ट बना दिए गए थे। उन्हें कमीशन में जितना रुपया मिलता था उतना कभी सात पीढ़ी में भी उन्हें नहीं मिला था।

सेठजी ने पूरा रुपया दे दिया था, उसी से बैंक खड़ा हुआ था। तीनों मित्रों के पास जो कुछ था दे दिया था, पर वह

दो लाख से भी कम था। बाकी रुपया वे अपनी समस्त आमदनी से पूरा करते रहेंगे, इसका एग्रीमेन्ट था।

बैंक शुरू ही से नफा बाँटने लगा था यह देखकर दोनों मित्रों को यह तलावेली पड़ी थी कि अधिक से अधिक नफा प्राप्त करने को जल्द से जल्द अपना रुपया कमा कर दें। सेठ जी को भी यही पट्टी पढ़ाई गई थी कि नफा जो मिले उसके अधिकाधिक शेअर खरीदते जाइए, जिससे बैंक ही आपका हो जाय। और सेठजी के दिमाग में यह बात जँच गई थी।

१०

तीन साल बीत गए। बैंक की अब कई शाखाएँ खुल गई थीं। और उसकी साख बहुत बढ़ गई थी। इस बीच में मि० जेन्टलमैन ने अपने बहुत से हिस्से बेच डाले थे। इसके सिवा उन्होंने बैंक से बहुत सा रुपया कर्ज ले रखा था। यह सब रुपया उनके हिस्सों की जमानत पर था। क्योंकि वे बैंक के कर्ताधर्ता थे। वे स्लिप लिखकर बैंक भेज देते, उतना ही रुपया वे पा जाते। इस रुपये से उन्होंने अपनी स्त्री के नाम बेशुमार जायदाद खरीद ली थी।

महावारी वेतन के सिवा उनकी और भी आमदनी थी। एक रियासत को आपने बैंक से बाईस लाख रुपया कर्जा दिलवाया।

स्टेट की पन्द्रह साल की तमाम तहसील बैंक ने आड़कर ली। पूरे लाभ का सौदा था—इसमें आपको कुछ भी नहीं करना पड़ा। परन्तु डाइरेक्टरों को राजी करने में पारिश्रमिक स्वरूप आपको एक लाख रुपया इनाम या घूँस मिल गया। इस प्रकार की आमदनी आपको होती ही रहती थी।

धीरे-धीरे बैंक की भीतरी हालत में परिवर्तन हो रहा था। अनेकों मदों में होकर बैंक का बेशुमार रुपया मि० जेन्टलमैन के घर पहुँच चुका था। सेठजी के जाली दस्तखतों से बैंक के डाइरेक्टरों की काल्पनिक बैठकों के निर्णयों पर बहुत से महत्त्वपूर्ण काम कर डाले गए थे। अब सेठजी से मि० जेन्टलमैन को भारी खतरा था, चाहे जब उनका भण्डाफोड़ हो सकता था। मि० जेन्टलमैन ने अन्त में सेठ जी को दुनियाँ से उठा डालने का निश्चय कर डाला।

११

रात के दस बजे थे। मि० दास और मि० सिन्हा के साथ मि० जेन्टलमैन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय पर बातचीत कर रहे थे। बातचीत बहुत गम्भीरतापूर्वक हो रही थी। सब बातें सुनकर मि० सिन्हा ने कहा—"लेकिन दोस्त यह निहायत खतरनाक काम है और अगर भेद खुल जायगा तो हम तीनों आदमियों को कालापानी हुआ रखा है और मैं तो अवश्य ही फाँसी पर लटकाया जाऊँगा।"

मि० जेन्टलमैन ने कहा—"यह आप बिल्कुल बेवकूफी की बातें करते हैं। भेद खुलेगा ही कैसे ? हम तीन ही तो आदमी इसको जानते हैं। तीनों ही इस खतरे के जिम्मेदार हैं। फिर खोलेगा कौन ? फिर इससे पहले जो काररवाइयाँ हुई हैं उनके भेद क्या खुले हैं ?"

मि० सिन्हा ने घबराकर कहा—"लेकिन मि० जेन्टलमैन ! अगर आप मुझे इस बार बरी रखते तो अच्छा था।"

जेन्टलमैन ने क्रुद्ध होकर कहा—"तब क्या आप समझते हैं कि लाखों रुपयों की सम्पत्ति यों ही हड़प ली जा सकती है ?

आपका यह साहस कि आप मेरे हुक्म की अदूली करें। मैं जो कहता हूँ वह आपको करना पड़ेगा।"

इसके बाद उन्होंने मि० दास की तरफ मुखातिब होकर कहा—मि० दास! जो दवा आपको मि० सिन्हा देंगे उसको इस्तेमाल कराने की जिम्मेदारी आपके ऊपर है। आपको मालूम है कि सेठजी बीमार हैं। आप आज रात भर उनके पास रहिए। और ठीक तौर पर दवा वगैरा देते रहिए। मि० सिन्हा आपको दो प्रकार की दवा देंगे। एक पीने की और एक मालिश करने की। आप मालिश करने की दवा चतुराई से इस ढंग से रख दीजिए कि जब आप सेठजी की स्त्री को दवा देने की हिदायत करके सो जायँ, तो वह मालिश करने की दवा सेठजी को पिला दे। देखिए ऐसा करने से आपके ऊपर कोई इलजाम भी नहीं आ सकता। लोग यह समझेंगे कि महज मामूली गलती हो गई और वह भी उनकी स्त्री के हाथ से।"

मि० दास ने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया।

मि० जेन्टलमैन ने खड़े होकर कहा—"तो मि० सिन्हा, आप सेठजी को देख आइए और दवा मि० दास के हाथ भेज दीजिए। मि० दास! आप खबरदार रहिए कि आपका यह वार चूकने न पाए। आपकी इस सेवा के पुरस्कार में पचास-पचास हजार रुपयों के ये चेक हाजिर हैं। यह कहकर उन्होंने जेब से निकाल कर दो चेक दोनों आदमियों के सामने फेंक दिए। इस भयानक रकम को जेब में डालकर दोनों आदमी इस अत्यन्त भयानक काम के करने को वहाँ से निकले।

मि० जेन्टलमैन सीधे बैंक में गए और अपने आफिस में बैठकर चपरासी को हिदायत कर दी कि कोई शख्श मुलाकात

करने को अन्दर न आने पाए। उन्होंने तमाम कागजात को अच्छी तरह से जाँच लिया। सेठजी के जाली दस्तख़तों से जो चेक कैश किए गए थे, उन सबकी उन्होंने एक सूची बना ली। इसके बाद जाकर उन्होंने देखा कि बैंक से कुल पैंतालीस लाख रुपए उन्होंने अपने नाम कर्ज खाते लिए हुए हैं। इसके बाद बैंक के मैनेजर को अपने सामने बुलाया और कहा—"कहिए, अब आप क्या कहना चाहते हैं। क्या आपने तमाम बैलेन्सशीट तैयार कर लिया?"

मैनेजर जी हाँ, लेकिन नक़द रुपया इस वक्त हाथ बहुत कम है और लगभग सब रुपया बाहर फँसा हुआ है। लोगों में हलचल और बेचैनी पैदा हो गई है। कल मैंने किसी तरह पेमेण्ट कर दिया, पर यदि आज भी उतनी ही डिमाण्ड रही तो पेमेण्ट होना मुश्किल है।

जेन्टलमैन ने चिंतित होकर कहा—"लेकिन क्या आप केवल आज का काम नहीं चला सकते? कल और परसों तो छुट्टी है। इन दो दिनों के अन्दर तो मैं रुपयों का काफ़ी इन्तज़ाम कर दूँगा।"

मैनेजर—"क्या आप ५ लाख रुपए अपने कर्ज खाते में से नहीं दे सकते?"

जेन्टलमैन—(भौं सिकोड़ कर) इससे आपको कोई सरो-कार नहीं। मैं यह कहना चाहता हूं कि आप खबरदार रहें और आप इस रक़म की कभी चर्चा न करें।

मैनेजर—(जरा दृढ़ता से) परन्तु जनाब, रुपयों का और कोई बन्दोबस्त भी तो नहीं हो सकता। अगर आप इजाजत दें तो मैं बैंक बन्द कर दूँ

जेन्टलमैन—नहीं, यह असम्भव है।

मैनेजर—तब पेमेण्ट भी असम्भव है। क्योंकि मुझे काफी यकीन है कि आज कम से कम दस लाख रुपया देना पड़ेगा। मेरे पास इस वक्त कुल चालीस हजार रुपया है। मैं बहुत थोड़ा और इन्तजाम कर सकता हूँ।

मि० जेन्टलमैन के माथे पर बल पड़ गए। वह अपनी कुर्सी पर से उठ खड़े हुए, उन्होंने क्रोध से हथेली पर मुट्ठी मारकर कहा—"क्या आप आज भर का काम नहीं चला सकते ?"

"जी नहीं !"—मैनेजर ने कागजात मेज़ पर डाल दिए।

"तब ठीक, आप बैंक को बन्द कर दीजिए।"

जेन्टलमैन तीर की तरह अपने कमरे से निकलकर मोटर में आकर बैठ गए।

१२

शहर में तुफान की तरह ख़बर फैल गई। बैंक का फेल होना और सेठ जी का एकाएक मर जाना, ये दोनों खबरें लोग आश्चर्य और सन्देह से सुन रहे थे। सेठ जी का मर जाना जिस तरह आश्चर्यजनक था, उसी प्रकार बैंक का फेल होना भी। जिस तरह सेठजी हट्टे-कट्टे थे, उसी तरह बैंक की हालत भी अच्छी थी। एकाएक यह क्या होगया, इसकी लोग कल्पना भी नहीं कर सके। जिनके रुपये बैंक में जमा थे, उनके ठट्ठ के ठट्ठ बैंक के आगे खड़े हुए थे। पुलिस प्रबन्ध कर रही थी, लोग दरवाज़ों पर पत्थर चला रहे थे, और चिल्ला रहे थे। भीड़ को काबू में करना कठिन हो रहा था। मि० जेन्टलमैन अपने सालीसीटर के यहाँ बैठे हुए अपने इन्सालवैंसी के कागज़ात तैयार

करा रहे थे। दर्वाजे बन्द थे, और दोनों व्यक्ति मेज़ पर फैले हुए कागज़ों को टटोल रहे थे।

सालीसीटर ने कहा—मि० जेंटलमैन! क्या यह अफवाह सच है कि बैंक की पोजीशन खराब होते देख सेठ जी ने जहर खा लिया।

"जी नहीं। मैंने सुना है कि उनकी स्त्री ने गलती से मालिश करने वाली दवा पिला दी। लेकिन यह सुना ही तो है, इसमें सचाई कहाँ तक है, यह तो ईश्वर जाने। परन्तु सेठ जी के मरने से मैं तो बड़ी आपत्ति में पड़ गया। और यह पाप का टीका मेरे ही सर पर लगा है। अफ़सोस है कि आज यह बदनामी मेरे गले बँधी।"

सालीसीटर ने सम्पूर्ण कागज़ात पर नजर दौड़ाते हुए कहा—मि० जेन्टलमैन! आपको जेल जाने की पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए, कागज़ात आपके खिलाफ हैं और बैंक का लगभग पचास लाख रुपया आपके नाम पड़ा हुआ है। अपने घर खर्च में गैर-कानूनी ढङ्ग से बैंक का रुपया आपने काम में लिया है।"

मि० जेन्टलमैन ने गम्भीर चेहरा बनाकर कहा—"मैंने जो कुछ किया है, सब बैंक के फायदे के लिए ही किया है। फिलहाल तो आप इन्सालवैंसी लिख दीजिए और जहाँ तक बने आप इस बैंक के रिसीवर बन जाइए। लेकिन आप इस बात को याद रखिए कि मेरे और आपके तालुकात नए नहीं हैं। अगर आप इस मुसीबत से मेरी रक्षा करने का ख्याल रक्खेंगे तो मैं बाहर नहीं हूँ, बैंक फेल हुआ है, मैं नहीं। उन्होंने दस हजार के नोट मेज पर रख दिए, यह आपका

आरम्भिक नजराना है। आगे मैं हर तरह आपको खुश करूंगा।"

दोनों ने भेद भरी निगाह से एक दूसरे को देखा, हाथ मिलाए और फिर आँखें मिलाईं। दोनों ने एक दूसरे को समझ लिया और अपना कर्तव्य निर्णय कर लिया।

१३

दास और मि० जेन्टलमैन फिर एकत्रित थे। इस समय दोनों के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ी हुई थीं। मि० जेन्टलमैन का मुँह गुस्से से लाल हो रहा था और मि० दास का भय से पीला। मि० जेन्टलमैन ने मेज पर हाथ मारकर कहा—"देखो मि० दास! अगर तुमने इस समय बेवक़ूफी की तो सीधे जहन्नुम-रसीद कर दिए जाओगे। मैं एक जेन्टलमैन हूँ, अगर तुम मेरी बात को मान गए और जैसा मैं कहूँ वैसा करते गए तो इसमें कोई शक नहीं, कि अभी तुम लाखों रुपया कमाओगे।

मि० दास ने कहा—"आप चाहते क्या हैं?"

जेन्टलमैन ने जेब से एक फ़ेहरिस्त निकालकर कहा—कि यह फ़िक्स्ड डिपाज़िस की सूची है। कुल पचासी लाख रुपया फ़िक्स्ड डिपाज़िट बैंक में जमा था। आप जानते हैं कि बैंक फ़ेल हो गया और इस वक्त पावने-दारों को दो आना फी रुपया भी नहीं मिल सकता। सेठ जी जो सब से बड़ी रकम के देनदार थे, वे बेचारे मर गए। अब तुम यह उद्योग करो कि जहाँ तक मुमकिन हो सके, तमाम फ़िक्स्ड डिपाज़िटर अपनी अपनी रसीदें ज्यादा से ज्यादा चार आने के हिसाब से हमको बेच दें, और जब उन्हें मालूम हो जाएगा कि बैंक से ≈) आने फी रुपया भी मिलना मुश्किल है, तो वे चार आने रुपये में अपनी रसीदें बेच देंगे। चूँकि जो कुछ मिल जाय सो बहुत है।"

"लेकिन वह रसीदें खरीदेगा कौन ?"—मि० दासने उतावले से होकर कहा।

"मैं खरीदूँगा, मैं। आप एकदम दलालों को डिपाजिटर्स के पास भेजिए। लेकिन याद रखिए, इसमें मेरा नाम न खुलने पाए और दूसरी बात यह भी याद रखिए कि हमको सिर्फ बारह दिन का मौका है। अगर हम इन दिनों में तमाम रसीदें न खरीद लेंगे तो याद रखिए कि हम लोग जहन्नुम रसीद हो जायँगे।"

मि० दास स्वीकृति सूचक सिर हिलाते हुए चले गए। इनके जाने के बाद ही मि० सिन्हा ने घबराए हुए कमरे में प्रवेश किया और कहा—"आपको मालूम है मि० जेन्टलमैन, हमलोगों के नाम वारन्ट जारी हो गये हैं।"

जेन्टलमैन ने सहज गम्भीर स्वर में कहा—"मालूम है। लेकिन भाई, मैं तो अपने बचने की कोई कोशिश नहीं करना चाहता, जो होगा सो भुगतूँगा लेकिन तुम पर मुझे तरस आता है। मैं चाहता हूँ कि तुम फौरन अमेरिका भाग जाओ, क्योंकि मुझे मालूम हो रहा है कि बैङ्क के फेल होने के साथ ही साथ सेठजी की मृत्यु पर भी शक हो रहा है।"

मि० सिन्हा ने कहा—"मि० जेण्टलमैन, आप तो जानते ही हैं कि मेरी तो कुल पूँजी बैङ्क में जमा थी। यह देखिए दो लाख की रसीद है।"

मि० जेण्टलमैन ने कहा—"भाई, उसके लिए तो सब्र करना पड़ेगा। जो बन पड़ा किया। लेकिन बात यह है कि विदेश में तुम कुछ कमाकर अपना सुखपूर्वक निर्वाह कर सको, इसलिए तुम्हारे पास एक छोटी-सी रकम जरूर होनी चाहिए, तुम्हारे

पास पचास हजार रुपया तो है ही, लाओ यह रसीद मुझे दो, मैं तुम्हें बीस हजार रुपए और दिये देता हूँ। तुम अपना बचाव करो। मेरे भगवान् मालिक हैं।"

यह कहकर उन्होंने बीस हजार के नोट निकालकर कर मि० सिन्हा के हवाले कर दिये। और रसीद अपनी जेब में रख ली।

मि० सिन्हा की आँखों में आँसू आ गये। उन्होंने कहा—"मि० जेन्टलमैन, आप धन्य हैं! अगर आपकी इस वक्त यह सहायता न मिलती तो मिट चुका था।"

जेन्टलमैन ने हाथ बढ़ा कर कहा—"लेकिन भाई, सही-सलामत जहाज में बैठ जाओ और अमेरिका पहुंच जाओ, तब जानूँ कि मेरी मेहनत सफल हुई। हमेशा के लिए याद रखना कि मैं एक जेन्टलमैन हूँ।"

मि० सिन्हा आँखों में आँसू भरकर बिदा हुए और चले गए।

जेन्टलमैन कुर्सी से उठे और दोनों हाथ मलते हुए कमरे में जल्दी जल्दी टहलने लगे। बड़बड़ाते हुए उन्होंने कहा कि सब काम अपने आप ठीक होते चले जा रहे हैं।

१५

ठीक दस दिन बाद मिस्टर दास और जेन्टलमैन फिर कमरे से अन्दर बैठे हुए थे। उनके सामने फिक्स्ड डिपॉजिटर्स की बहुत सी रसीदें फैली हुई थीं। इन सबकी एक सूची बना कर उन्होंने जोड़ लगाकर देखा कि कुल पैंसठ लाख रुपये की रसीदें हैं, जो उन्हें सिर्फ सात लाख रुपयों में मिल गईं। उन रसीदों को समेट कर जेब में रखते हुए जेन्टलमैन ने एक ठण्डी साँस ली और कहा—"मिस्टर दास, अब मैं जो कुछ कर सकता था कर गुजरा। मेरे पास जो कुछ था वह मैंने डिपॉजिटरों को

दे दिया। अब ये रसीदें हैं जो सब मेरे साथ चिता में जलेंगी। आप जानते हैं कि इनकी एक कौड़ी भी अब वसूल नहीं होने की। अब तक मैंने आपके साथ सब तरह से दोस्ती निभाई, अब कहिए कि मैं आपके साथ क्या कर सकता हूँ? मैं चाहता हूँ कि जो कुछ स्याह सफेद हो मेरा हो, आपको आँच भी न आए। लेकिन चूँकि आप बैंक के सेक्रेटरी रह चुके हैं और कुल कागजात के आप जिम्मेदार हैं और प्रेजिडेण्ट की आज्ञा से तमाम बातें आपने की हैं, और प्रेजिडेण्ट साहब का देहान्त हो गया है, अतः अब आप ही एक आदमी बचे हैं कि जिनपर तमाम जवाब देहियाँ आ सकती हैं।"

मिस्टर दास ने घबराकर कहा—"मिस्टर जेन्टलमैन, आप मुझे बचाइए। हालाँकि मेरे तमाम रुपये बैंक के साथ डूब गए, फिर भी जो कुछ मेरे पास है उसे खर्च करने को मैं तैयार हूँ, पर बेदाग बच जाऊँ। मैं अपनी औरत के जेवर तक बेचने को तैयार हूँ।"

जेन्टलमैन ने करुणापूर्ण शब्दों में कहा—"नहीं मेरे दोस्त, तुम मेरे कारण इस मुसीबत में फँसे हो। मैं तो बर्बाद हुआ पर तुम्हें कभी बर्बाद नहीं होने दूँगा।" कुछ देर वे चुप रहे। फिर धीरे से कहा—

"तुम्हारे दो लाखके शेयर बर्बाद हुए हैं न। लाओ वह रसीद मुझे दो और दस हजार रुपये मेरे पास बचे हैं, ले लो। मैं चाहता हूँ कि तुम इससे कोई रोजगार करो। और जो तजुर्बा तुमने मेरी सोहबतसे उठाया है, उससे लाभ उठाओ।" मिस्टर दास को कभी यह उम्मेद नहीं थी कि उन्हें एकदम दस हजार रुपये की अच्छी रकम उन रद्दी रसीदों की एवज में मिल जाएगी।

उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि मिस्टर जेन्टलमैन मनुष्य नहीं, देवता हैं। उन्होंने खुशीसे नोटों की तरफ हाथ बढ़ाया। लेकिन जेन्टलमैन ने एक कागज उनकी तरफ बढ़ाकर कहा—"मिस्टर दास, इस कागज पर तुम्हें दस्तखत करने होंगे। और यह रुपया तुम्हारा है।" उन्होंने रुपये मिस्टर दास के सामने फेंक दिए और मिस्टर दास ने कागज को बिना पढ़े ही दस्तखत कर दिए। मिस्टर जेन्टमैन ने रसीद लेकर अपनी जेब के हवाले की।

१५

अदालत का कमरा ठसाठस भरा था। 'व्यापार बैङ्क लिमिटेड' का सनसनीदार मुकदमा हाईकोर्ट की फुल बेञ्च में पेश था।

मिस्टर दास और मिस्टर जेन्टलमैन अपराधी के कटघरे में खड़े थे। तीसरा अभियुक्त मिस्टर सिन्हा फरार था। चौथे सेठजी मर चुके थे। इन चारों के खिलाफ बैङ्क का रुपया अपने अपने निजी काम में लाने का अभियोग था। और यह बतलाया गया था कि इसी कारण बैंक फेल हो गया।

मिस्टर जेन्टलमैन के सालीसीटर ने अदालत को जवाब दिया। कि मेरे मुवक्किल के खिलाफ यह इलजाम बिल्कुल गलत है। बैंक का रुपया निजी काम में खर्च नहीं किया गया। कागजात में अलबत्ता रकम मेरे मुवक्किल के नाम दर्ज है। लेकिन माई लार्ड! यह कर्जा नहीं है। मेरे मुवक्किल के ६७ लाख रुपए बैंक में फिक्स्ड डिपॉजिट में जमा हैं, जिनकी ये रसीदें अदालत में पेश करता हूँ। और उसने वह तमाम रसीदों का ढेर अदालत में पेश कर दिया।

मि० जेन्टलमैन ने किस इरादे से इन रसीदों का संग्रह किया था, इसका भेद मि० दासको अब लगा और वह अचकचा

कर मि० जेन्टलमैन की तरफ देखने लगे। जेन्टलमैन मुस्करा रहे थे।

इसके बाद जेन्टलमैन के बैरिस्टर ने एक कागज अदालत में पेश किया, जिस पर मि० दास की सही थी। इस कागज के द्वारा यह साबित होता था कि दास ने ही अपनी जिम्मेदारी पर प्रेजिडेण्ट के कहने के मुताबिक बैंक की काफी रकम सेठजी के कारोबार में लगाई थी।

दास ने इस बात से बिल्कुल इन्कार किया, लेकिन उनका दस्तखत कागज पर अकाट्य प्रमाण था। हाईकोर्ट ने फैसला दे दिया।

जेन्टलमैन बरी हो गए। बैंक फेल हुआ। मि० दास पाँच वर्ष के लिए जेल भेज दिए गए।

१६

मि० जेन्टलमैन बम्बई छोड़कर दिल्ली चले आए हैं। यहाँ उन्होंने बहुत सी जायदाद खरीदी है। बम्बई में भी इनकी बड़ी भारी जायदाद है। लोगों का ख्याल है कि उनकी सम्पत्ति एक करोड़ से ऊपर है। वह बड़े हँसमुख और लोकप्रिय हैं। खूब पार्टियाँ देते हैं। अकसर लोग उनसे प्रसन्न हैं। लोग जब उन्हें बिजनेस करने को कहते हैं तो वह हँस कर कहते हैं कि बाबा, अब मैं कोई बिजनेस नहीं करूँगा। बिजनेस ने मुझे बड़ी बड़ी तकलीफें दी हैं। मैं एक जेन्टलमैन हूँ। आजकल बिजनेस का ढंग बहुत बिगड़ गया है, इसलिए किसी भी जेन्टलमैन को बिजनेस नहीं करना चाहिए। लोगों का ख्याल है कि वह निहायत खरे और बेलाग आदमी हैं।

विधवाश्रम

[आर्यसमाज एक ऐसी सुधारक संस्था के रूप में उदय हुआ जिसने हिन्दू-समाज के सम्पूर्ण दासता के बंधनों को काटकूट कर उन्हें 'उठो—जागो' के पुकार से जगा दिया। आर्यसमाज की यह सेवा भुलाई नहीं जा सकती। परन्तु स्वार्थी और चरित्रहीन पुरुष सब भलाइयों को बुरा रूप दे देते हैं। आर्यसमाज में भी ऐसे लोग घुस गए। उन्होंने केवल अपनी हीन-चरित्रता ही पर संतोष नहीं किया, अपनी कुत्सा को ऐसा नंगा किया कि आर्यसमाज के समाज-सुधार के महत्त्वपूर्ण अंग बहुत विकृत हो गए।

सुधारक की स्थिति उस चिकित्सक के समान है जो भयानक छूत की बीमारियों की चिकित्सा करता है। ऐसे चिकित्सकों को अपनी शुद्धि का उतना ही ध्यान रखना पड़ता है जितना रोगी को प्राण रक्षा का। इस काम में तनिक भी असावधान होने से चिकित्सक पर ही प्राणसंकट आने का भय रहता है।

इस कहानी में बहुत तीव्र व्यंग और असंतोष की भावना में लेखक ने 'विधवाश्रमों' के भीतरी कुत्सित जीवनों का भण्डाफोड़ किया है—जिनकी स्थापना आर्यसमाज ने उसकी अत्यन्त आवश्यकता समझ कर की थी। और अन्त में सच्चे अर्थों में कुटनखाने बन गए। लेखक को कुछ दिनों तक बिलकुल निकट से ऐसी संस्थाओं को देखने का अवसर मिला है इसलिए—उसके ये रेखाचित्र काल्पनिक नहीं, सच्चे हैं]

एक गन्दी और तङ्ग गली के भीतरी छोर पर, पुराने पक्के दुमञ्जिले मकान के भीतरी हिस्से में, एक कोठरीनुमा कमरे में

चार-मूर्तियाँ एक टेबिल पर बैठी धीरे-धीरे बातें कर रही थीं। यह मकान वास्तव में विधवाश्रम था और यह मनहूस कमरा था उसका दफ़्तर।

टेबिल पर कुछ मैले रजिस्टर, पुरानी पुस्तकें, दो-एक साप्ताहिक पत्र, कुछ काग़ज़ और कुछ चिट्ठियाँ अस्त-व्यस्त पड़ी थीं।

चारों व्यक्तियों में जो प्रधान पुरुष थे, उनकी उम्र कोई पचास वर्ष की होगी। उनका रङ्ग क़तई ताँबे की भाँति, चेहरा साहबनुमा सफाचट, बदन गठीला, क़द ठिगना, चाल बिल्ली के समान और दृष्टि साँप के समान थी। हृदय कैसा था, इसका भेद वह जाने जो वहाँ की सैर कर आया हो। आप विशुद्ध खद्दर पहनते थे और किसी को सम्मुख देखते ही मुस्कुरा कर तिर्छी गर्दन करके दोनों हाथ जोड़ कर नमस्ते करते थे। आपका असली और पुराना नाम तो था सुखदयाल, परन्तु आप बहुतायत से डॉक्टर साहब के नाम से ही पुकारे जाते थे। आपने कब, कहाँ और कितनी डॉक्टरी पढ़ी, यह जानने का अब कोई उपाय नहीं। एक युग हो गया तभी से आपका यह नाम पेटेण्ट हो गया है। सुना है, बहुत दिन हुए—आप किसी गुरुकुल में कम्पाउण्डर थे। वहाँ के रसोइए, कहार और कोई-कोई ब्रह्मचारी भी आपको डॉक्टर ही कह कर पुकारते थे, तभी से आपका यही नाम पड़ गया।

आश्रम में आने पर आपको तीन नाम और पेटेण्ट करने पड़े—पिता जी, अधिष्ठाता जी और संरक्षक जी।

चारों धर्मात्मा बैठे धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे कि भीतर

से एक स्त्री ने आकर कहा—'पिता जी! लुगाइयाँ तो दोनों बहुत बढ़िया हैं।'

"अच्छा!"

"दोनों की उठती हुई उम्र है, रङ्ग भी ख़ूब निखरा हुआ है, पर दोनों रो बुरी तरह रही हैं।"

"अच्छा, उन्हें कुछ खिला-पिला कर बातचीत से खुश करो, और अलग-अलग कोठरियों में सुला दो।"—इतना कह कर पिता जी, उर्फ़ डॉक्टर जी, उर्फ़ अधिष्ठाता जी ने बूढ़े बकरे की तरह दाँत निकाल दिए और अपनी मनहूस आँखों को क्षण भर के लिए सामने बिखरे हुए काग़ज़ों पर से उठा कर बात करने वाली धरमपुत्री (?) की ओर घूर दिया। धरमपुत्री उसी तरह एक कटाक्ष फेंक और दाँतों की बहार दिखाती हुई चल दी।

इस धरमपुत्री की उम्र लगभग ३० वर्ष, रङ्ग कोयले के समान, जिस्म लम्बा, बदन छरहरा और चेहरा पानीदार था। दाँत चमकीले, आँखें तेज़ और चञ्चल तथा वाणी साफ़ और लच्छेदार थी। यही आश्रम की संरक्षिका, इस छोटे से स्त्री-जेलखाने की सुपरिन्टेण्डेन्ट, और इस पाप-महल की सर्वतन्त्र स्वतन्त्र महारानी थी। नाम था प्रेमदेवी।

२

उसी दिन, दिन के तीन बजे विधवाश्रम के बाहरी बैठकख़ाने में, चारों मूर्तियाँ एक टेबिल पर विराजमान थीं। चारों पुरुषों

में जो प्रधान पुरुष थे—वे वही हमारे डॉक्टर जी थे। वे अपने स्वभाव-सिद्ध ढङ्ग पर गर्दन टेढ़ी किए पेन्सिल से लिखते हुए कुछ भुनभुनाते जाते थे। इनकी बाँईं ओर जो व्यक्ति थे, उनका मुँह पिचका हुआ, आँखें गढ़े में घुसी हुईं, लम्बी गर्दन और बड़ी सी नाक थी, सिर पर मैली खद्दर की टोपी थी। ये बड़े ध्यान से डॉक्टर जी की बात में दत्तचित्त हो रहे थे। असल में ये आश्रम के सेक्रेटरी थे। और सिर्फ़ पच्चीस रुपए ऑनरेरियम पाते थे। उनके बराबर तीसरे व्यक्ति एक नवयुवक थे। इनकी घिनौनी मूँछें बड़े भद्दे ढङ्ग से मुख पर फैल रही थीं। आँखों में शरारत और चेष्टा में बदमाशी साफ़ झलक रही थी। ये डॉक्टर जी के हुक्म के मुताबिक़ सामने रक्खे हुए, खुले काग़ज़ों की फ़ाइल में कुछ काट-छाँट कर रहे थे। इन्हें आश्रम से तीस रुपए महीना वेतन भी मिलता था। बेचारों के ऊपर रातदिन का, आश्रम और उसकी रहने वाली स्त्रियों की रक्षा का असह्य भार था। विवश उन्हें रात को भी नौकरी से फ़ुर्सत नहीं मिलती थी, हालाँकि आप बहुत कुछ शिकायत किया करते थे। पर इस ग़ैर-फ़ुर्सती में आप कितने खुश थे, सो भगवान जानता है। ये एक तौर से इस मण्डली में गुड़ के चिउँटे हो रहे थे। इनका नाम था गजपति।

इनकी बग़ल में लाला जगन्नाथ बैठे थे। इनका स्याहफ़ाम चेचक से गुदा मुँह, भद्दी सी आँखें, नाटा क़द और बात-बात में सनक सी उठना—इनके व्यक्तित्व को सबसे पृथक् कर रहा था। आपकी उम्र पचास के लगभग थी। आप मुख पर गम्भीरता और भक्ति-भाव लाने के लिए जो चेष्टा प्रायः किया करते थे

उससे ऐसा प्रतीत होता था, मानो आप अभी रो पड़ेंगे। शायद इसी चेष्टा के फल-स्वरूप आपका होठ नीचे को लटक गया था, और चेहरा कुछ लम्बा हो गया था।

लेख को ठीक करा डॉक्टर जी बोले—'बस अब हिसाब में जो थोड़ी सी भूल है, उसे तुम ठीक कर करा लेना। परन्तु सुनो—कल ही तो अन्तरङ्ग मीटिङ्ग है, सब कागज़ात आज ही रात को तैयार और साफ़ हो जाने चाहिएँ। पीछे का बखेड़ा रहना ठीक नहीं।'

"बहुत अच्छा! परन्तु वे दो सौ रुपए, जो कुन्ती की शादी में वसूल हुए हैं, किस मद में डाले जायँ?"

"किसी में भी नहीं, अभी उनकी बात छोड़ो, उनका हिसाब मैं पीछे दूँगा। तुम्हें अपना हक़ तो मिल गया न?"

"कहाँ, सिर्फ़ पच्चीस मिले हैं।"

"तब यह लो पाँच और, यह हिसाब तो साफ़ हुआ। आप लोगों को भी तो इस विवाह का हिस्सा मिल गया है।"

दोनों अन्य पुरुषों ने भी स्वीकृति दे दी। इस पर डॉक्टर जी कुछ कहना चाहते थे कि एक वृद्धा स्त्री ने द्वार में घुस कर मूर्त्ति-चतुष्टय को धरती में माथा टेक कर प्रणाम किया।

गजपति ने कहा—माई, क्या है?

"महाशय जी! मेरी यह फुफेरी बहिन की लड़की है, बेचारी बाल-विधवा है, न कोई आगे न पीछे। मैं अन्धी-धुन्धी बुढ़िया हूँ, इसकी कहाँ तक देख-भाल कर सकती हूँ। घर में इसका मन नहीं लगता। सदैव द्वार पर खड़ी रहती है। कहती हूँ—सधवाओं जैसा बनाव-सिङ्गार क्या इसको रुचता है? पर यह एक नहीं सुनती। आपकी मैंने तारीफ़ सुनी है, ख़राब

औरतों को आप सुधारते हैं, उनकी रक्षा करते और उन्हें सन्मार्ग पर लाते हैं। महाराज! आप कृपा कर इस लड़की का कुछ उपाय कीजिए।"

इतना कह कर उसने अपने पीछे सिकुड़ी खड़ी बालिका को धकेल कर आगे किया और माथा टेकने का आदेश दिया। बालिका आगे दो कदम बढ़ कर ठिठक गई। बोली नहीं, न उसने माथा ही टेका। केवल एक बार भयभीत नेत्रों से मण्डली को देखा। एक क्षीण हास्य-रेखा उसके मुख पर आई और वह चुपचाप खड़ी धरती को निहारने लगी।

तीनों आदमी उस शर्माई हुई बालिका को एकटक देखने लगे। मण्डली विचलित सी हो गई।

गजपति ने कहा—"बुड्ढी माँ, तुमने अच्छा किया इसे यहाँ ले आईं, यहाँ इसकी हमजोलियाँ बहुत हैं। अच्छा, इसे ज़रा आने-जाने को कहो। क्यों जी, तुम्हारा नाम क्या है?" इतना कह कर गजपति ने उसके कन्धे पर हाथ धर दिया।

डॉक्टर जी ने कहा—"ठहरो, उसे सामने वाली कोठरी में बैठने दो, मैं इससे अभी बात करूँगा।" बालिका तत्काल कोठरी की ओर चली गई। वृद्धा बैठी रही, लाला जगन्नाथ उसे उपदेश देने लगे।

बालिका वास्तव में यहाँ की घूराघूरी देख कर घबरा उठी थी। वहाँ से वह जान बचा कर कोठरी में भाग गई। और चाहे कोई न जाने, परन्तु स्त्रियाँ बदमाशों की पापदृष्टि को खूब पहचानती हैं।

इसके बाद डॉक्टर जी उठ कर कोठरी में घुस गए, दरवाज़ा उढ़का दिया। यह देखते ही ग़रीब बालिका सूख गई। वह वहाँ

से उठकर बाहर को जाने की चेष्टा करने लगी। डॉक्टर जी ने हाथ पकड़ कर कहा—बेटी! डर क्या है, घबराने की बात नहीं।

इतना कह वे उसे कनखियों से देखने लगे। बालिका सिकुड़ कर बैठ गई और उनकी बात की प्रतीक्षा करने लगी।

डॉक्टर जी ने कहा—'तुम्हारा नाम क्या है?

"चन्दन!"

"बहुत सुन्दर नाम है। अच्छा यह तो बताओ—तुम्हारे मन में कभी किसी तरह की उमङ्ग तो नहीं उठती?"

बालिका समझी नहीं। वह बड़ी-बड़ी आँखें उठा कर डॉक्टर जी की ओर देखने लगी।

"आह! समझी नहीं, (कन्धे पर हाथ धरकर और पास खसक कर) अभी नादान बच्ची हो। मन के भाव समझती नहीं। खैर देखो, तुम चाहो तो यहाँ आश्रम में रहो, चाहे कभी-कभी आया करो। कुछ रुपए-पैसे की जरूरत हो तो मुझसे कहो। देखो, भेद-भाव मत रखना। अब मैं तुम्हारा रक्षक हुआ। क्यों, हुआ न? बोलो!"

बालिका बिना हाथ-पैर हिलाए चुपचाप बैठी रही। उसके बदन पर पसीना आ रहा था।

डॉक्टर जी ने उसकी कमर में हाथ डालकर अपनी ओर खींचते हुए कहा—जवाब तो दो!

बालिका ने तिनक कर कहा—आह! यह क्या करते हैं, अपना हाथ खींच लीजिए।

"क्रोध मत करो। जब मैं रक्षक हुआ तो जो पूछूँगा बताना पड़ेगा, जो कहूँगा करना पड़ेगा, किसी बात में उज्र न करना।

होगा। देखो, तुम्हारी यह साड़ी कितनी पुरानी और गन्दी हो गई है। ये रुपए ले जाओ, नई ले लेना।"

इतना कहकर डॉक्टर जी ने पाँच रुपए का एक नोट उसके हाथ पर धर दिया। बालिका नोट देखकर घबरा उठी, ले या न ले—न समझ सकी। उसके मनमें नई साड़ी पहनने की लालसा जाग्रत हो उठी। वह उत्सुक होकर डाक्टर जी के सफाचट मुख को देखने लगी।

डॉक्टर जी ने कहा—नोट को सम्हाल कर रख लो। जेब तो है न—चोली में रख लो, गिर न जाय। ठहरो, मैं रख देता हूँ।

बालिका न रोष, न निषेध कर सकी। डाक्टर जी ने उसकी चोली में हाथ घुसेड़ दिया। एक पैशाचिक आवेश से डाक्टर जी का लाल चेहरा और भी लाल हो उठा।

बालिका घबराकर उठ बैठी, और उसने धड़ाम से किवाड़ खोल दिए। डाक्टर जी हड़बड़ा कर उठ बैठे। उन्होंने धीरे से कहा—अच्छा, बाक़ी बातें फिर होंगी, परसों इसी समय आना। पर देखना, रुपयों की बात किसी से न कहना—समझी?

"पर जब खर्च करूँगी, तब तो भेद खुलेगा ही?"

"कह देना किसी सहेली ने दिया था, या पड़ा पा गई थी।"

"ख़ैर, आप बेफ़िक्र रहें, मैं सब ठीक कर लूँगी।"

अब डाक्टर जी दुलार से बालिका के गालपर चुटकी लेकर बाहर चले आए। हँसकर बुढ़िया से कहा—'लड़की बड़ी सीधी है, दो-चार बार आने से समझ जायगी। न होगा तो यहाँ कुछ दिन रख लिया जायगा।'

बुढ़िया ने कहा—"भगवान् आपका भला करें। आपने बड़ा

भारी धर्म का बीड़ा सिर पर उठाया है।" इतना कह और धरती में माथा टेक बुढ़िया रवाना हुई।

३

डाक्टर साहब आश्रम के भीतरी कक्ष में एक शतरञ्जी पर बैठे थे। सामने एक नवयुवती सिकुड़ी हुई बैठी थी। डाक्टर साहब मन लगाकर उसे सन्मार्ग पर लाने की चेष्टा कर रहे थे। उन्होंने कहा—देखो बेटी, मैं तुम्हारा धर्म का पिता हूँ और रक्षक हूँ। समझती हो न ?

"जी हाँ, आपने पत्र में भी यही लिखा था, इसीसे आप पर विश्वास करके चली आई हूँ। आपकी धर्म की पुत्री हूँ। आह, मैं बड़े दुष्टों के फन्दे में पड़ गई थी, कहने को समाजी, पर परले दर्जे के लुच्चे, औरतों का व्यापार करने वाले।"

"अच्छा, तुम कहाँ जा फँसी थी ? ख़ैर, जाने दो इन बातों को। तो देखो, जब मैं तुम्हारा रक्षक और धर्म-पिता हुआ, तब तुम्हें मेरे कहने के अनुसार काम भी करना होगा। तुम जानती हो, मैं सदैव तुम्हारी भलाई की बात ही सोचूँगा।"

"मुझे आपका भरोसा है।"

"अच्छी बात है, तुम्हें तीन दिन यहाँ आए हुए। कहो, कोई कष्ट तो नहीं है ?"

"जी नहीं।"

"खाने-पीने की दिक़्क़त ?"

"जी, कुछ नहीं।"

"कपड़े-लत्ते तुम्हारे पास काफी हैं न ?"

"जी हाँ ?"

"खैर, मैं दो जोड़ा साड़ी तुम्हें आज ही और भिजवाए देता हूँ। तुम कैसी साड़ी पसन्द करती हो, रेशमी कोर की न ?"

"जी जैसी मिल जाँय।"

"जैसी चाहोगी वैसी ही मिल जायगी ! खैर, तुम्हें कुछ जेब-खर्च भी चाहिए ?"

"जी नहीं, मेरे पास कुछ रुपए हैं।"

"अच्छी बात है। हाँ, एक बात—यहाँ जेवर पहनने का नियम नहीं है ! तुम्हारे गहने सब कोष में जमा होंगे।"

"कोष क्या है ?"

"आश्रम का कोष—यानी खज़ाना। जब तुम्हारा विवाह होगा, तब वापस दे दिए जावेंगे।"

"मगर मैं विवाह तो कराने की इच्छा ही नहीं करती।"

"यह कैसी बात है ? फिर यहाँ आई क्यों हो ?"

"मैं तो विद्या पढ़ कर केवल अपना धर्म सुधारना चाहती हूँ।"

'परंतु जवान लड़कियों का धर्म सिर्फ विद्या से ही नहीं बचता।'

"तब ?"

"उन्हें ब्याह करना चाहिए।"

"ब्याह तो एक बार हो चुका, वही तक़दीर में होता तो तक़दीर क्यों फूटती ?"

"यह संसार के कारख़ाने हैं, सब दिन एक से नहीं रहते। कहा है—"बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेहु।"

"मैं तो विद्या पढ़ने ही आई हूँ।"

"विवाह कराके विद्या भी पढ़ना।"

"विवाह कराना मैं नहीं चाहती।"

"तुम्हें अवश्य विवाह कराना चाहिए।"

"मैं धर्म-काज में जीवन व्यतीत करना चाहती हूँ।"

"तुम्हारा विवाह किसी धर्मोपदेशक से करा दिया जायगा।"

"पर यह मुझे पसन्द नहीं, मुझे विवाह से घृणा है।"

"यह तुम्हारी नादानी है।"

"आप मेरे पढ़ने-लिखने का बन्दोबस्त कर दें।"

"परन्तु यह विधवाश्रम है, कोई कन्या-पाठशाला नहीं।"

"आपने लिखा था कि पढ़ने का प्रबन्ध हो जायगा।"

"पर विवाह के बाद।"

"विवाह के बाद आप क्या यहाँ रख सकेंगे ?"

"यहाँ रखने ही से क्या—जो विवाह करेगा, वह पढ़ाएगा।"

"और यदि मैं विवाह न करूँ ?"

"अवश्य करना पड़ेगा ?"

"मैं विवाह नहीं करूँगी ?"

"कह चुका, अवश्य करना पड़ेगा।"

"तब मुझे चली जाने दीजिए, मैं यहाँ न रहूँगी।"

"यह भी असम्भव है।"

"असम्भव क्यों ?"

"नियम है।"

"यह तो धींगामुश्ती है।"

"तुम चाहे जो कुछ समझो।"

"मैं यहाँ एक मिनिट भी नहीं रह सकती।"

"तुम यहाँ से जा नहीं सकतीं।"

"देखूँ कौन रोकता है।"

डॉक्टर ने सङ्केत किया। गजपति और जगन्नाथ

अधिष्ठात्री देवी के साथ आ हाज़िर हुए। डॉक्टर ने कहा—"इस बेवकूफ़ को समझाकर राज़ी करो।" और वे चले गए।

युवती जबर्दस्ती बाहर जाने लगी।

गजपति ने कहा—'ज़ोर क्यों करती हो, ज़ोर हममें भी है। बात समझो-समझाओ, ज़ोर से कुछ नहीं बनेगा।'

"मैं कुछ नहीं सुनती, मैं अभी जाऊँगी।"

"जा नहीं सकती?"

"क्या मैं क़ैदी हूँ?"

"जो कुछ समझो।"

"तुम सब लोग एक ही से पिशाच हो, धर्म की टट्टी में शिकार खेलते हो।"

"जो जी में आवे सो बको।"

"क्या तुम ज़बर्दस्ती शादी कराना चाहते हो?"

"और आश्रम हमने किस लिए खोला है?"

"मैंने समझा था कि विधवाओं को शिक्षा मिलती है। रोटी-कपड़ा मिलता है, वे स्वावलम्बिनी बनाई जाती हैं।"

"और तुम्हें यह नहीं मालूम कि उनकी शादियाँ भी होती हैं?"

"मैं समझती थी, जो शादी कराना चाहे उसीकी शादी होती होगी।"

"बस यही ग़लती है। इस तरह यहाँ पंछियों का बसेरा बसाया जाय तो आश्रम का दिवाला दो दिन में निकल जाय। यहाँ तो नया माल आया—इधर से उधर चालान किया, आश्रम का भी खर्च निकला और तुम लोगों का भी भला हुआ।"

"मैं अपना भला कर लूँगी, तुम अपना खर्च ले लो और मुझे जाने दो।"

"खर्च कहाँ से दोगी ?"

"और कुछ मेरे पास नहीं, जो दो-चार गहने हैं उन्हें ले लो।"

"लाओ, ये तो कोष में जमा होंगे।

युवती ने गहने उतार दिए। उन्हें गजपति ने हाथ में लेकर कहा—'हमने तार देकर तीन आदमी पञ्जाब से तुम्हारे लिए बुलाए हैं। वे आज रात को आ जावेंगे। एक तो आ भी गया है, अब यह तुम्हारी पसन्द पर है, जिसे चाहो पसन्द करो।'

इतना कह और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए, उसने उसे पीछे को ढकेल दिया। जब तक यह सम्हले, गजपति ने बाहर निकल कर साँकल चढ़ा दी और कहा—'भागने की चेष्टा के भय से ऐसा किया गया है, बुरा न मानना। अभी विवाह को ना-नू करती हो, जब सुन्दर जवान देखोगी तो खुश हो जाओगी। दिन भर पड़ी-पड़ी सोच लो।

इतना कह कर तीनों चल दिए। युवती भौंचक सी खड़ी रह गई। फिर वह जोर-जोर से किवाड़ पर हाथ मारने और चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगी।

४

"देखो सावित्री, आज तुम्हारी शादी फिर निश्चय हो गई है। और इस बार भी तुम्हें वही चालाकी करनी होगी। तुम कुछ नई तो हो नहीं, सब बातें जानती हो।"

"अब इस बार मुझे कहाँ जाना होगा ?"

"दूर नहीं, करनाल के पास एक क़स्बे में।"

"हे ईश्वर, वहाँ मेरा दिल कैसे लगेगा?"

"दिल की एकही कही, दस-पन्द्रह दिन नहीं काट सकती हो?"

"माल-मलीदे तो ख़ूब मिलेंगे?"

"ख़ूब!"

"और वह उल्लू?"

"वह एक बूढ़ा खूसट है, ख़ूब बनाना।"

"कुछ झगड़ा-बखेड़ा तो खड़ा न होगा?"

"झगड़ा क्या होगा!"

"ख़ैर, मुझे क्या मिलेगा?"

"सैर-सपाटा, माल-टाल और बढ़िया साड़ी, जूता मोजा और तीन-चार अदद नए गहने।"

"और रुपए? रुपए इससे न जमा कराए जावेंगे?"

"पाँचसौ तो बँधी बात है, उसका क्या कहना।"

"पर इस बार सब रुपए मैं लूँगी।"

"यह कैसे हो सकता है, पहले की भाँति अद्धम-अद्धा पर सौदा होगा।"

"अच्छी बात है, मुझे मंजूर है।"

"तब नहा-धोकर सिंगार-पटार कर लो। उल्लू को सामान का पर्चा उतरवा दिया है, लेकर आता ही होगा। साड़ी तुम स्वयं पसन्द कर लेना।"

उपरोक्त बात-चीत विधवाश्रम की अधिष्ठात्री देवी और एक युवती में हो रही थी। बात-चीत करके अधिष्ठात्री जी चली गईं और युवती कुछ सोचकर हँस पड़ी। उसने उँगली पर गिन कर आप ही कहा—एक-दो-तीन! यह तीसरा उल्लू है। इसमें

भी खूब मज़ा है। थोड़ी देर तक वह अपने भूतकाल को सोचने लगी। वह वर्तमान जीवन से उसका मुक़ाबला करने लगी—क्या यह अच्छी बात है? पति के घर में कैसी सुखी थी। ज़रा-सी बात पर लड़कर निकल भागी, और ये दुष्ट मुझे फाँस लाए। अब यहाँ अजीब शादियाँ होती हैं, रुपए गाँठ में करो, दुलहिन बनो, ब्याह करो और फिर चकमा देकर भाग आओ। फिर ब्याह कर लो। पकड़ी जाओ—तो कह दो कि ज़ुल्म करता है, मारता है। जय गंगाजी की!

युवती फिर ज़रा हँस दी। फिर कुछ सोचने लगी। थोड़ी देर में उसने एक महरी को पुकार कर कहा—'ज़रा बलवन्त को तो बुला दे।'

बलवन्त एक ३० वर्ष का हट्टा-कट्टा, किन्तु मैला-कुचैला आदमी था। उसकी आँखें छोटी, नाक पतली और लम्बी, माथा तङ्ग और रङ्ग पीला था। उसके दाँत बड़े गन्दे थे, और मूँछें बड़ी बेतरतीब थीं। वह ठिगना मोटा और बेहूदा सा आदमी था। उसने आकर ज़रा हँसकर कहा—'क्या हुक्म है?'

"वही मामला है, बस समझ लो।"

"सब समझ चुका हूँ, सुन लिया है।"

"बताओ फिर क्या करना होगा?"

"करना-धरना क्या है, ज़रा शर्मीली नवेली बनकर चली जाओ। दस-पाँच दिन ख़ूब शर्मीली बनी रहना, बूढ़े को अच्छी तरह सुलगाना। पाँच-सात गहने वसूल करना, उसे रिझाना। मौका पाकर चिट्ठी में भागने की तारीख़ लिखना—समय भी लिख देना। समय वही सन्ध्या का ठीक है, मैं गली में मिल जाऊँगा, सवारी तैयार रहेगी। हमलोग अगले स्टेशन से सवार

होंगे। पाँच-सात दिन पहले की भाँति सैर करेंगे, फिर यहाँ आ जाएँगे।" बलवन्त ने युवती को घूरकर हँस दिया। युवती ने नटखटपने से हँस कर कहा—"बस, इस बार तुम्हारे चकमे में मैं नहीं आने की, सैर-सपाटा नहीं होगा, मैं सीधी यहीं आऊँगी।"

"कैसी बेवक़ूफ़ हो, जब वह यहाँ ढूँढ़ने आवेगा, तब क्या होगा ?"

"मैं क्या जानूँ !"

"बस, तो जब ऐसी अनजान हो तो जैसा हमारा बन्दोबस्त है, वही करो। तुम्हारे गायब होते ही वह सीधा यहीं दौड़ेगा और आश्रम का कोना-कोना छानकर चला जायगा। बस आश्रम की जिम्मेदारी ख़तम। फिर दूसरा उल्लू देखेंगे ?"

"और इतने दिन तुम अपनी मनमानी करोगे।"

"देखो प्यारी, मेरे विषय में ऐसी बात मत कहो। दो-दो बार तुम्हारे लिए मैं जान हथेली पर धर चुका हूँ। तुम्हें मैं दिल से चाहता हूँ। अन्त में तो और दो-चार खेल खेल कर तुम मेरी होगी ?"

"चलो हटो, मैं तुम्हारा मतलब ख़ूब जानती हूँ। तुमने जानकी से भी ऐसे ही कौल-क़रार किए थे। आख़िर जब झगड़ा पड़ा तो साफ़ बच गए, बेचारी को जेल जाना पड़ा।"

"नहीं प्यारी, ऐसा न कहो—क़सूर उसी का था।"

"ख़ैर, जाने दो। तो अब क्या बात पक्की रही ?"

"वही, जो मैं कह चुका हूँ।"

"मैं तुम्हें ख़त लिखूँगी ?"

"हाँ, उसमें इशारा भर कर देना कि कौन तारीख़।"

"अच्छी बात है।"

"बाकी सब काम मैं स्वयं कर लूँगा।"

"बहुत अच्छा।"

"पर, आज ×××"

"चलो हटो, आज मेरी शादी है, ऐसी बातें न करो।

"अच्छा देखा जायगा।"—यह कह कर दुष्टतापूर्ण सङ्केत करके वह चला गया।

५

"महाशय जी, पाँच सौ रुपए तो मैं जमा कर चुका, अब ये दो सौ किस लिए माँगे जाते हैं ?"

"महाशय जी, वे पाँच सौ रुपए तो स्त्री-धन हैं। यदि तुम उसे त्याग दो, उस पर जुल्म करो, उसे दगा दो तो वह क्या खाएगी, वह तो कहीं की न रही न; इसका तुम्हें अभी इक़रार-नामा लिखना पड़ेगा।"

"खैर, वह मैं लिख दूँगा, कहीं घर-गृहस्थ में ऐसा भी होता है ? महाशय जी, मैं गृहस्थ आदमी हूँ, लुच्चा-लुङ्गाड़ा नहीं।"

"तभी ऐसी देवी आपको दी गई है, दुनिया में चिराग जला कर भी देखोगे तो ऐसी लड़की न मिलेगी।

"यह आपकी मेहरबानी है।"

"तब लीजिए, यह रहा इक़रारनामा—दस्तख़त कीजिए। आओ जी तुम बलवन्त, गवाही कर दो। एक गवाही और चाहिए। अधिष्ठात्री देवी जी को बुला लो, वे कर देंगी। हाँ, वे दो सौ ?"

"वे दो सौ किस मद्द में जावेंगे ?"

"आश्रम की मद्द में। महाशय जी, आश्रम का खरचा कहाँ से चलता है, यह तो सोचिए। लड़कियों को महीनों रख कर उन पर कितना खर्च किया जाता है। उनकी शिक्षा, परवरिश, उनके कुसंस्कारों को दूर करके उनके विचारों को शुद्ध करना, उन्हें आदर्श गृहिणी बनाना—यह सब मामूली बात थोड़े ही है। ये दो सौ रुपए आश्रम को दान समझिए, इनकी आपको रसीद मिलेगी। खातिरजमा रखिए।"

"मगर मैं आश्रम को तो पचास रुपए प्रथम ही दे चुका हूँ।"

"वह तो दाखिला फीस थी महाशय जी ! यह तो आश्रम का नियम है कि जब कोई विवाहार्थी आवे तो फीस दाखिला लेकर तब विवाह की चर्चा चलाई जाय।"

"मगर महाशय जी, ये दो सौ रुपए तो भार मालूम देते हैं।"

"यह आप क्या कहते हैं ? संस्था को देने में आप इधर-उधर करते हैं। सोचिए, यदि संस्था न होती तो कितनी देवियाँ धर्म-भ्रष्ट होतीं, और आपकी सेवाएँ भी कैसे हो सकती थीं।"

अधिष्ठाता जी, उर्फ पिता जी और वर में उपरोक्त घिस-फिस बड़ी देर तक होती रही और तब उन्होंने दो सौ के नोट गिन दिए। इसके बाद ही, स्वस्ति-वाचन, शान्ति-प्रकरण का जोर-शोर से पाठ हुआ। अग्नि प्रज्वलित हुई, दुलहिन आई और पवित्र वैदिक रीति से विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। विवाह होने पर अधिष्ठाताजी बोले—"पन्द्रह रुपए और दीजिए !"

"यह किस लिए ?"

पाँच पण्डित जी की विवाह-दक्षिणा; पाँच की साड़ी अधिष्ठात्री देवी के लिए और पाँच की मिठाई सब लड़कियों के वास्ते।"

कुछ अनमने होकर पन्द्रह भी दे दिए। इसके बाद उन्होंने घड़ी देख कर कहा—अब आप बिदा की तैयारी करा दीजिएगा। गाड़ी जाने में अधिक देर नहीं है।

"पर अभी तो प्रीति-भोज होगा।"

"बस प्रीति-भोज रहने दीजिए।"

"ऐसी जल्दी नहीं। सब तैयार है। भला बिना भोजन विवाह कैसा?"

प्रीति-भोज का आयोजन हुआ। पुरोहित, अधिष्ठाता और अल्लम-गल्लम, जो वहाँ उपस्थित थे, सभी बैठे। भोज समाप्त होते ही हलवाई ने बिल अधिष्ठाता जी को दे दिया। उन्होंने एक नजर डाल कर वर महाशय की तरफ़ संकेत करके कहा—'आपको दो।'

वर महाशय ने घबरा कर कहा—'अब यह क्या है?'

"अभी प्रीति-भोज हुआ न, उसी का बिल है।"

"यह भी मुझे चुकाना पड़ेगा?"

"वाह महाशय जी, यह ख़ूब कही, विवाह आपका होगा तो क्या बिल और कोई चुकाएगा?"

"इसका पेमेण्ट तो आश्रम को करना चाहिए।"

"वाह, आश्रम तो आप ही की संस्था है, वह यह भार कैसे उठा सकती है। सोचिए तो।"

वर महाशय ने जरा गुनगुने होकर बिल चुका दिया और

कहा—"अब आप ज़रा जल्दी कीजिए, गाड़ी के जाने में वक्त बिलकुल नहीं रहा है।

"बस अब विलम्ब कुछ भी नहीं है। विवाह आपका शुभ हो।"

इसके थोड़ी देर बाद ही वर-वधू विदा हुए। वधू ने हँस-हँस कर सब से हाथ मिलाए। किसी-किसी से घुसपुस बातें कीं और पतिदेव के साथ खट से कूद कर ताँगे पर चढ़ गई।

यह असल वैदिक विवाह का प्रताप था—कि वधू रोई नहीं, चिल्लाई नहीं, घूँघट किया नहीं, शर्माई नहीं। बोलो वैदिक धर्म की जय!!

६

"कहिए, आपका क्या काम है ?"

"मुझे आपसे एकान्त में कुछ कहना है।"

"यहाँ एकान्त ही है, निस्सङ्कोच कहिए। इन लोगों से कुछ छिपा नहीं।"

"आपसे मैं एक सहायता लेना चाहता हूँ।"

"कहिए भी, क्या सहायता ?"

"एक लड़की का उद्धार करना है।"

"कहाँ से ?"

"वेश्या के घर से।"

"वह लड़की कौन है ?"

"उसी वेश्या की कन्या।"

"आप क्यों उद्धार किया चाहते हैं ?"

"वह वहाँ रहना और कुकर्म कराना नहीं चाहती, उसकी मा उसे मजबूर कर रही है, पर वह पसन्द नहीं करती।"

"वह क्या चाहती है ?"

"किसी भले आदमी से व्याह करना चाहती है।"

"वह भले आदमी शायद आप हैं ?"

"जी नहीं, मैं तो ऐसा कर ही नहीं सकता। आप जानते हैं, जात बिरादरी का मामला है।"

"तब फिर आपको उसकी इतनी चिन्ता क्यों है ? लाखों वेश्याओं की लड़कियाँ यही करती हैं।"

"मैं सिर्फ इसका उद्धार चाहता हूँ, और आपकी सेवा से भी बाहर नहीं।"

"आप किस तरह काम करना चाहते हैं—खुलासा कहिए।"

"सुनिए, मैं किसी तरह उसे वहाँ से निकाल लाऊँगा, बाजार में सौदा खरीदने के बहाने। उसकी माँ मुझ पर विश्वास करती है, भेज देगी। फिर मैं उसे डिप्टी कमिश्नर के पास भेज दूँगा। वहाँ वह कह देगी की मेरी माँ मुझसे बुरा काम कराना चाहती है—उससे मुझे बचाया जाय। जब उससे पूँछा जायगा कि तू कहां जाना चाहती है, तब वह आश्रम में आने को कह देगी। उसे आप यहाँ रख लें, और हम जिस आदमी से कहें उसकी शादी उसी रात को कर दें। ये दो सौ रुपए आपकी नजर हैं।"

"और वह आदमी कौन है ?"

"मेरा नौकर है।"

"समझा गया, इस ढङ्ग से आप उस लड़की पर अधिकार करना चाहते हैं। मगर वह नोकर शादी होने पर आपके हत्थे क्यों लड़की को चढ़ने देगा ?"

"वह आठ रुपए माहवार पाता है। उससे हमने ज़बानी तय कर लिया है कि लड़की पर उसे कोई दखल नहीं होगा। इक़रारनामा भी लिखा लिया है कि इसकी मर्जी के माफिक अगर मैं इसका भरण-पोषण न कर सकूँ, तो लड़की को स्वतन्त्र रहने का अधिकार है। वह इक़रारनामा मेरे पास है।"

"बड़े उस्ताद हो। दो सौ रुपए लाए हो ?"

"ये हाज़िर हैं।"

',जाओ अपना काम करो, लड़की को यहाँ भेज दो। मगर देखो, वह इस शादी में ना-नु तो न करेगी ?"

"ज़रा भी नहीं।"

"तब ठीक।"

७

बिधवा-आश्रम का आज वार्षिकोत्सव था। सभास्थान खूब सजाया गया था। लाल-पीले कपड़ों पर वेद-मन्त्र लिखकर लटका दिए गए थे। धर्म और सत्यकर्म का प्रवाह बह रहा था। नमस्ते' की गूँज आसमान को चीर रही थी। बहुत सी स्त्रियाँ और पुरुष एकत्रित थे। सभास्थल खचाखच भर रहा था। थोड़ी देर बैण्ड बज चुकने के बाद सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। भीतरी ओर का एक छोटा सा दरवाजा खुला और उसमें से पाँच-छै आदमी निकले। ये सब अन्तरङ्ग सभा के सदस्य थे। इन्हीं में हमारे पूर्व-परिचित डाक्टर साहब तथा अन्य सत्पुरुष भी थे।

उनके आते ही सभा में तालियों की गड़गड़ाहट से सभा-भवन गूँज उठा। इसके बाद ही लाला जगन्नाथ जी ने चिल्लाकर कर कहा—"मैं प्रस्ताव करता हूँ कि आज की सभा में हमारे परम श्रद्धास्पद, आदरणीय श्री डॉक्टर साहब सभापति का स्थान ग्रहण करें।" गजपति ने प्रस्ताव का अनुमोदन किया। अब डाक्टर साहब भाँति-भाँति के मुँह बनाए, उसी प्रकार टेढ़ी गर्दन किए, विविध रीति से शिष्टाचार प्रदर्शन करते हुए अति दीन-भाव से सभापति के आसन पर जा बैठे। मानों उन्हें फाँसी लगाई जा रही थी। उनके आसीन होते ही फिर तालियाँ बजीं। अब एक महाशय जी बड़ा सा साफ़ा सिर पर लपेटे उठ खड़े हुए और बड़े गर्वीले ढङ्ग से खड़े होकर एक भजन गाना आरम्भ किया। भजन क्या था, गद्य-पद्य का सम्मिश्रण था। न सुर, न ताल। वे ख़ूब चीख़-चीख़ कर कर गाने लगे और साथ ही हारमोनियम बजाने लगे। हारमोनियम भी ख़ूब चीख़ रहा था। अन्ततः लोगों के कानों के पर्दे फटने लगे और वह गायन समाप्त हुआ। इसके बाद डाक्टर साहब ने खड़े होकर वक्तृता देनी प्रारम्भ की :—

"भाइयो और देवियो! आज आपके आश्रम का द्वितीय वार्षिक उत्सव है। इस अवसर पर इतने आदमियों को एकत्रित देख कर मैं फूला नहीं समाता हूँ। अभी मन्त्रीजी आपको रिपोर्ट सुनाएँगे। उससे आपको मालूम होगा कि अधोगति के मार्ग में पतित भ्रष्टा स्त्रियों को पतन के महापङ्क से उद्धार करने में आश्रम ने कितनी समाज की सेवा की है। ईश्वरकी कृपा और आपलोगों की सहानुभूति से संस्था ख़ूब सफल हो रही है (हर्षध्वनि)। परन्तु अभी लाखों-करोड़ों अनाथ विधवाएँ हैं, जिनका उद्धार

होना बाक़ी है (सुनो-सुनो)। काम बड़ा कठिन है, और उसे यह आश्रम ही पूरा कर सकता है। सज्जनों, आर्य-पुरुषों, क्या आप इस आश्रम से सहानुभूति नहीं रखते हैं ? (हर्षध्वनि) क्या आप इसकी हस्ती को क़ायम रखना चाहते हैं ? (अवश्य-अवश्य) तब मैं आशा करता हूँ कि आप अपनी जेबों में जो हाथ आश्रम के नाम पर डालेंगे, वह खाली बाहर न आएगा। आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि जो-जो महाशय चन्दा देंगे, उनका नाम-ठिकाना सब समाचार-पत्रों में छपा दिया जाएगा। इसके बाद आपने लम्बे भाषण में यह साबित कर दिया कि यह संस्था कितनी पवित्र है और आर्य-समाज के सिद्धान्तों की रक्षा के लिए ऐसी संस्थाओं की बड़ी भारी आवश्यकता है।"

आपके बैठते ही प्रबल ताली की घोषणा से सभामण्डप गूँज उठा। इसके बाद मन्त्री महोदय वार्षिक रिपोर्ट पढ़ने के लिए उठ खड़े हुए।

"रिपोर्ट पढ़ने से पता लगा कि गत वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष १५००) की अधिक आय हुई है (हर्षध्वनि)। इस वर्ष कुल ५५७५।।–)।। आमदनी हुई है। और ५५७५।)।। खर्च हुए हैं। रोकड़ ।–) बाक़ी बचा है। इनमें कर्मचारियों का वेतन-खाते ३२००) और मकान-भाड़ा और स्टेशनरी के खाते १३००), मुक़-दमे खाते ८००), छपाई खाते २००) रु० खर्च हुए हैं। ७५।)।। फुटकर खर्च खाते में आए हैं। यद्यपि ।–) की रक़म जो हाथ में बची है, बहुत कम है, फिर, भी वह बचत तो है। ईश्वर की कृपा से हमारी संस्था को क़र्ज़ नहीं लेना पड़ा है।"

रिपोर्ट खतम होते ही फिर तालियों की ध्वनि से सभाभवन गूँज उठा। इस बीच में एक आदमी ने खड़े होकर कहा—"मुक़दमे में ८००) की बड़ी रकम ख़र्च होने का कारण क्या है?" सभापति ने कहा—"कृपा कर बैठ जाइए, सभाके काम में गड़बड़ी न कीजिए।" पर उसने एक न सुनी। कड़क कर कहा—"महाशय, मैंने गत वर्ष ५००) दान दिया था, और बीच-बीच में भी मैं संस्था को सहायता देता रहा हूँ। सो क्या मुक़दमेबाजी में ख़र्च करने के लिए? मैं यह जानना चाहता हूँ कि जनता के धन का दुरुपयोग तो नहीं किया जा रहा है।"

मन्त्रीजी ने कहा—हमारे पूज्य प्रधान जी–डॉक्टर साहब पर एक मामूली औरत के भगाने का मुक़दमा खड़ा किया गया था। इसके सिवा हमारे विश्वासी कर्मचारी गजपति के विरुद्ध भी दो ऐसे ही झूठे मुक़दमे खड़े कर दिए गए थे। यह बात सभी जानते हैं कि उक्त दोनों सज्जन संस्था के कितने सहायक हैं। इसलिए विवश हो, हमें पैरवी करनी पड़ी और यह रुपया ख़र्च करना पड़ा।"

इतने में एक दूसरे आदमीने खड़े होकर कहा—"और वेतन खाते जो आपने तीन हजार से अधिक रकम डाली है, इसका व्यौरा क्या है? जितने उच्च अधिकारी हैं, वे तो सभी अवैतनिक हैं, फिर इतनी रकम क्या की जाती है?"

यह सुनते ही सभापति ने खड़े होकर कहा—"महाशय, यह तो सभा के काम में पूरा विघ्न हो रहा है। कृपा कर आप बैठ जाइए।"

चारों तरफ़ शोर मच गया—"बैठा दो, निकाल दो, चुप

कर दो।" उक्त महाशय ,गुस्से से आग-बबूला होकर उठकर बाहर चले गए।

सेक्रेटरी महाशय फिर रिपोर्ट पढ़ने लगे। इसपर एक और आदमी उठकर कुछ कहने लगा।"

सभापति ने कड़क कर कहा—"महाशय! इस भाँति बारम्बार बेहूदे ढङ्ग से सभा के काम में विघ्न करना अनुचित है। मैं उपस्थित भाइयों से पूछता हूँ—क्या आप इस बात को पसन्द करते हैं?"

चारों तरफ़ 'नहीं-नहीं' का शोर मच गया और वह आदमी भी उठ गया।

इसके बाद आश्रम के कार्यों के कुछ उदाहरण सुनाए गए।

रजवन्ती एक तेलिन थी। उसकी उम्र २२ वर्ष की थी। उसका पति उसे अच्छी तरह नहीं रखता था। उसे आश्रम में आश्रय दिया गया, और सरकार से लिखा-पढ़ी करके पति से उसे बेदख़ल कर दिया गया। फिर उसका विवाह एक अच्छे युवक से कर दिया गया। उसने २००) आश्रम को दिए।

एक मुसलमान-स्त्री अज़ीमन स्टेशन पर कहीं जा रही थीं। उसकी गोद में एक बालक भी था। उसे हमारे उत्साही कार्यकर्ता गजपति जी आश्रम में ले आए, और समझा-बुझा कर, उसे शुद्ध कर उसका विवाह एक युवक से कर दिया। उसके पति ने मुक़दमा चलाया, पर जीत हमारी ही हुई।

गुलाबो वैश्य-कन्या थी। उसका पति कमाऊ न था। उसे खाने-पीने का कष्ट था। उसने हमारे परम श्रद्धास्पद डॉक्टर साहब को पत्र लिखा कि मुझे कहीं ठिकाना करवा

दो। बस उसे वहाँ से किसी तरकीब से मँगवा लिया गया और उसका विवाह उसकी पसन्द के एक आदमी से कर दिया गया।

राजो नामी एक २३ वर्ष की स्त्री थी। वह व्यभिचारिणी हो गई थी। उसे कोई उपदेशक फुसला लाया था। कुछ दिन वह उसके घर में रही। पीछे न जाने कैसे उसे शराब पीने की आदत पड़ गई। वह वहाँ से भाग आई और आश्रम में पहुँचाई गई। यहाँ हमारे आदरणीय डॉक्टर साहब ने उसे एकान्त में बहुत-कुछ धर्मोपदेश दिया और उसे सुशिक्षा दी। पर वह दुष्टा डॉक्टर साहब के ऊपर ही कुकर्म का दोषारोपण करने लगी। इसके बाद वह स्थिर हुई और उसका ब्याह एक योग्य पुरुष के साथ कर दिया गया। उसने उसके साथ असद् आचरण किया, तो वह फिर आश्रम में आ गई। आश्रम की तरफ़ से उस पुरुष पर मुक़दमा चला दिया गया। उसने एक हजार रुपए देकर डर कर सुलह कर ली। आधा उसमें से आश्रम को दिया गया। अब फिर उस स्त्री का विवाह किया जायगा।

इन उदाहरणों को सुन कर सभा में हलचल मच गई। और लोग बारम्बार धन्यवाद देने लगे। सभापति की प्रशंसाओं के पुल बँध गए। और संस्था की सदुपयोगिता की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। इसके बाद ही चन्दे की वर्षा शुरू हुई और मेज पर रुपयों और नोटों का ढेर लग गया।

८

दो आदमी चुपचाप बातें करते सड़क से जा रहे थे। सन्ध्या का समय था। एक ने कहा—'बस ठहर जाओ। यही वह घर है। वह खिड़की देखते हो, वहीं है वह।'

"वह तो बन्द है।"

"अवश्य वह खोलेगी। मैं तीन दिन से देखता हूँ। वह बार-बार इशारा करती है।"

"यार, क्यों बेपर की उड़ाते हो। ऐसे ख़ूबसूरत भी नहीं हो, जो कोई औरत तुम पर मरे—फिर वह महलों में रहने वाली।" इतने में खिड़की खुली और एक औरत उसमें दीख पड़ी।

उस आदमी ने मित्र की बात ख़तम होते ही कहा—'देखो, वह देखो।'

दोनों ने देखा—वह कुछ सङ्केत कर रही थी।

अब कुछ देर उधर देख, एक बग़ल खड़े होकर उनमें से एक ने संकेत किया। संकेत का उत्तर संकेत में दिया गया। अब दोनों को सन्देह नहीं रहा। परन्तु एक ने कहा—"भाई देखो, यह मामला कुछ और ही ढंग का मालूम देता है, प्रेम का नहीं। वरना वह औरत दो आदमियों को संकेत न करती।" यह कह-कर उसने फिर उस स्त्री को सङ्केत किया। स्त्री का सङ्केत पाकर उसने कहा—"ठहरो, सब ठीक हुआ जाता है। अभी हमें एक पुलिस का कॉन्स्टेबिल बुलाना पड़ेगा।" वह लपक कर एक कॉन्स्टेबिल को बुला लाया। कॉन्स्टेबिल ने खिड़की की तरफ़ देखा—वह स्त्री वहीं खड़ी थी और संकेत कर रही थी। उसने

कहा—जरूर यह औरत बदमाशों के अड्डे में क़ैद है। ठहरो, पहले यह देखना है कि यह मकान है किसका।

कॉन्स्टेबिल ने तुरन्त ही पता लगा लिया और उन आदमियों से कहा—तुम लोग यहीं रहो, मैं थाने से मदद लेकर आता हूँ, मकान पर धावा बोलना पड़ेगा।

थोड़ी ही देर में दो कॉन्स्टेबिलों को लेकर पुलिसइन्स्पेक्टर आ गया, और सब लोग आश्रम के द्वार पर जा धमके। द्वार पर धक्के देने पर एक आदमी ने द्वार खोला। पुलिस को देख कर वह घबरा कर बोला—"आप क्या चाहते हैं ?"

"मैनेजर साहब कहाँ हैं ?"

"डॉक्टर जी हैं, वे भीतर हैं।"

"उन्हें ज़रा बुलाओ !"

चपरासी भीतर गया। सुनकर डॉक्टर साहब की फूँक निकल गई। वे बाहर आए और बिलैया-डण्डौत करते हुए कोई वारदात नहीं है।

"मगर मैं मकान की तलाशी लेना चाहता हूँ।"

"आप ऐसा नहीं करने पावेंगे।"

इन्स्पेक्टर ने डॉक्टर को पीछे ठेल दिया और वे घर में घुस गए। वे सीधे उसी कमरे में पहुँचे। बाहर ताला बन्द था। उन्होंने कहा—इसमें कौन है ?

"इसमें एक बाबू साहब का सामान बन्द है।"

"वे कहाँ हैं ?"

"बाहर गए हैं ?"

"इसकी ताली कहाँ है ?"

"वह उन्हीं के पास है।"

"अच्छी बात है"—इन्सपेक्टर ने एक कॉन्स्टेबिल से कहा—"ताला तोड़ दो।"

डॉक्टर साहब के विरोध करने पर भी ताला तोड़ दिया गया। देखा, उसमें तीन कोठरियों में तीन स्त्रियाँ क़ैद थीं। उन्होंने बयान दिए कि हमें फुसला कर लाया गया है और शादी करने को राजी न होने पर बन्द कर दिया गया है।

अधिष्ठाता जी उर्फ़ डॉक्टर जी, उर्फ़ पिता जी, और धरम-पुत्री जी उर्फ़ अधिष्ठात्री देवी जी तथा गजपति जी और बल-वन्त तथा उक्त तीनों स्त्रियों को साथ ले पुलिस-इन्स्पेक्टर थाने को चल दिया। धर्मात्मा हवालत की शोभा-वृद्धि करने लगे।

६

कई स्त्रियों के ग़ायब होने की रिपोर्ट पुलिस में प्रथम ही से पहुँची हुई थी। पुलिस ने स्त्रियों से पूछ कर उनके वारिसों को बुला लिया। और सब सबूत तैयार होने पर मैजिस्ट्रेट के सामने मुकदमा दायर किया गया।

मैजिस्ट्रेट के सामने पहुँच कर डॉक्टर साहब ने गम्भीर धर्म-भाव धारण कर लिया। "धरमपुत्री" जी बड़ी सीधी गऊ बन गईं। गजपति ने रोनी सूरत बना ली। तीनों स्त्रियाँ लज्जा से सिकुड़ी खड़ी थीं। आखिर औरतों को उड़ाने, उन्हें बेचने और जबर्दस्ती बन्द कर रखने का मुकदमा चला।

मैजिस्ट्रेट ने बारी-बारी से तीनों स्त्रियों के बयान लिए।

"एक ने कहा—मेरा नाम रामकली है। मैं हैदराबाद दक्खिन से आई हूँ। पर मेरा असली वतन कानपुर है। जात की ब्राह्मण हूँ। मेरा पति हैदराबाद में नौकर था, वह वहीं मर गया। तब एक पड़ोस के भले घर में मैं मिहनत-मजूरी करके गुज़र करने लगी। उस घर के मालिक की मेरे ऊपर बुरी नज़र पड़ी, उन्होंने मुझे तङ्ग करना शुरू कर दिया। अन्त में उन्होंने मेरा धर्म भ्रष्ट कर दिया। उन्होंने बड़े-बड़े सब्ज़ बाग़ दिखलाए थे। पर थोड़े ही दिनों में उनका बर्ताव बदल गया। उन्होंने मुझे पढ़ने को सलाह दी, मुझे वह पसन्द आ गई। उन्होंने कहा कि हम तुझे दिल्ली-आश्रम में भेज देते हैं, वहाँ बहुत अच्छा बन्दोबस्त है। मैंने स्वीकार किया। वे मुझे मन्त्री आर्य-समाज के पास ले गए। उन्होंने मुझे लिखा-पढ़ी करके यहाँ पहुँचा दिया। यहाँ इन लोगों के रङ्ग-ढङ्ग देख कर मैं घबरा गई। मन्त्री जी ने कहा था कि वहाँ आर्य-देवियाँ रहती हैं—विद्या पढ़ाई जाती है, और सन्ध्या, हवन नित्य-कर्म होते हैं। पर यहाँ देखा तो कुट्टन-खाना है, गुण्डों का राज्य है। वे भले घर की बहिन-बेटियों को फुसला कर लाते हैं और दस-पाँच दिन खिला-पिला कर बेच देते हैं। मेरा भी सौदा होने लगा। २—३ आदमी भी बुलाए गए। रुपए भी वसूल कर लिए, पर मैं मर्दों की दुष्टता को जान चुकी हूँ। मैं इन पर विश्वास नहीं करती, न उनकी दासी बनना चाहती हूँ। फिर मेरी किस्मत में जो होना था, हो गया। मैं विद्या पढ़ कर कहीं अध्यापिका की नौकरी करना चाहती थी, जिससे गुज़र हो जाती। परन्तु

ये लोग तो बेचने को पागल हो रहे थे। मुझे बहुत डराया-धमकाया, पर जब मैं राज़ी न हुई, तब बन्द कर दिया। मैं सात दिन बन्द रही। दो बार मुझे पीटा भी गया। एक बार यह गजपति ज़बर्दस्ती करने को मेरी कोठरी में घुस आया था, उससे बड़ी कठिनाई से जान बचाई। मैंने उसकी बाँह में काट खाया, उसका निशान अवश्य होगा। यह अधिष्ठात्री देवी कहाती हैं, पर पूरी चुड़ैल हैं। ये उसका ज़ुल्म आँखों देखती और खिलखिला कर हँसती थीं। नित्य ही यहाँ ऐसा होता है। उस दिन से मुझे खाना भी नहीं दिया गया था और मार डालने की धमकी दी जाती थी।"

मैजिस्ट्रेट ने पूछा—तुम्हारी उम्र क्या है?

रामकली—बाईस वर्ष हुज़ूर।

मैजिस्ट्रेट—तुम्हारे पास कुछ गहना और दूसरा सामान भी था, जब तुम आई थीं?

रामकली—जी हाँ हज़ूर, दो अदद सोने तथा चार अदद चाँदी के गहने थे, सबकी कीमत दो सौ रुपया होगी। वे सब इन्होंने छीन लिए। वहाँ कोष में जमा होंगे।

मैजिस्ट्रेट—और कपड़े वग़ैरह?

रामकली—वह सब छीन लिया।

मैजिस्ट्रेट—अच्छा तुम इधर बैठो। दूसरी लड़की को लाओ।

दूसरी लड़की ने आकर बयान किया—

"मेरा नाम चम्पा है। उम्र १८ वर्ष की है। जाति की वैश्य हूँ। मेरे पिता बरेली में पुलिस-इन्स्पेक्टर थे। मैं ७-८ वर्ष की

थी, तब कुछ लड़कियों के साथ खेल रही थी। इतने में एक आदमी आया, वह फुसलाकर हमें तमाशा दिखाने के बहाने थोड़ी दूर ले गया। हम तीन लड़कियाँ चलीं। थोड़ी दूरपर उसने एक ताँगा रोक कर कहा—'लो इसपर बैठ कर चलो, जल्दी पहुँच जायँगे।' हम लोग ताँगे पर बैठ गए। उसने एक मकान में हमें छोड़ दिया, वह बहुत बड़ा मकान था और उसमें बहुत सी लड़कियाँ थीं। हम कुछ दिन घर की याद में रो पीटकर वहाँ रहने लगीं। बहुत दिन बीत गए और हम घर को भूल गईं। एक बार एक पञ्जाबी-सा मोटा-ताजा आदमी मेरे पास लाया गया। वह मुझे घूर-घूर कर देखने लगा। पीछे पता लगा कि इससे मेरी शादी होगी। मैं डर गई। उस आश्रम में एक कहार का लड़का नौकर था, उसने कहा कि मेरे साथ शादी करो तो मैं तुझे यहाँ से निकाल दूँ। मैं राजी हो गई और वह वहाँ से एक दिन शाम को मुझे निकाल कर, रेल में बैठाकर मथुरा ले आया। हमलोग धर्मशाला में ठहर गए। न जाने कैसे पुलिस ने भाँप लिया कि यह भगा कर ले आया है। पुलिस उसके पीछे पड़ी। वह भाग गया, मैं अकेली रह गई। कहाँ जाऊँ, यह कुछ न बता सकी। पिता का स्मरण भी न था। कहाँ हैं, कौन हैं। लाचार कुछ लोगों ने मुझे वहाँ के विधवाश्रम में भेज दिया। फिर वहाँ रहने लगी।

पर यहाँ के हालात बड़े गन्दे थे। खुला व्यभिचार होता था। पुलिस वाले आते और उन्हें लड़कियाँ रात भर को सौंप दी जाती थीं। एक बार पुलिस-इन्सपेक्टर को मेरे कमरे में भेज दिया। मैं भय से थर-थर काँपने लगी। पेशाब का बहाना कर छत पर से कूदकर भागी। कुछ देर तो जमुना किनारे घाट पर

छिपी रही, पीछे स्टेशन पर आई। वहाँ यह आदमी गजपति मुझे मिला। इसने मेरी सब कहानी सुनकर कहा कि तेरे बाप को मैं जानता हूँ। चल मैं तुझे वहाँ पहुँचा दूँ। यह मुझे दिल्ली ले आया और यहाँ आश्रम में रख दिया।

"यहाँ भी वही हाल देखा। पर इस बार मैं अपने को न बचा सकी। इस गजपति ने मेरा धर्म बिगाड़ दिया। यह रात-दिन यहीं रहता है और बिना इसकी इच्छा पूरी किए कोई लड़की अपनी इच्छानुसार काम नहीं कर सकती। यह बड़ा निठुर नर-पशु है, नित्य ही दो-चार शिकार पकड़ लाता है। डॉक्टर बूढ़ा घाघ है, बेटी-बेटी करके ही सब कुकर्म करता है। उस दिन मुझसे कहा कि मेरे यहाँ रोटी पकाने के लिए आ जाना। जब गई तो बुरी-बुरी बातें कहने लगा। मैं वहाँ से अकेली ही भाग आई। अधिष्ठात्री देवी उनकी पुरानी चुड़ैल हैं। उन्होंने सब्ज बाग़ दिखाकर मुझे शादी करने को लाचार कर लिया। मैं राज़ी हो गई। गहने, कपड़े, रुपए मिलने की आशा थी। वह आदमी मेरठ के पास के किसी देहात का बनिया था। लोहे का काम करता था। उसकी औरत मर चुकी थी और उसे गर्मी की बीमारी हो गई थी। मुझे उससे बड़ी घृणा थी। पर वह मेरी बड़ी आवभगत करता था। यह बात तय हो गई थी कि गजपति अमुक दिन वहाँ जायगा और मौक़ा पाकर उड़ा लाएगा। यही हुआ, और मैं फिर यहाँ लाई गई! वह भी आया, झगड़ा हुआ तो उसे डरा दिया कि तुमने लड़की को मार डालने की कोशिश की है, तुम पर फ़ौजदारी चलेगी। बेचारा भाग गया।

"फिर दूसरी जगह मेरा ब्याह कर दिया गया। और वहाँ से भी उसी भाँति भगा लाई गई। पर इस बार जिससे ब्याह

हुआ था, वह आदमी मुझे पसन्द था; पर ये लोग जबर्दस्ती ले आए। मैंने अपने गहने, कपड़े, रुपए माँगे और पति के पास जाना चाहा तो इन्होंने मुझे मारा और बन्द कर दिया। ६ दिन से मैं बन्द हूँ। गजपति रोज रात को मेरा धर्म नष्ट करता है, उससे मेरी पार नहीं बसाती।"

मैजिस्ट्रेट ने पूछा—तुम्हारे गहने, कपड़े, रुपए कहाँ हैं ?

चम्पा—हजूर इन्हीं के पास हैं।

मैजिस्ट्रेट—डाक्टर को मालूम है ?

चम्पा—हुजूर उसी के हुक्म से वे छीने गए हैं।

मैजिस्ट्रेट—अच्छा हटाओ, तीसरी को बुलाओ।

तीसरी ने आकर बयान दिया :—

"मेरा नाम गोमती है। आयु पच्चीस वर्ष, जात वैश्य, रहने वाली जिला अलीगढ़ की हूँ। मेरे पति हैं, ससुर हैं और परिवार के लोग हैं। मैं राजघाट स्नान करने आई थी, वहाँ साथ वालियों से भटक गई। यह गजपति मुझे माता-माता कहकर साथ ले आया। कहा—हम स्वयं सेवक हैं। चलो घर पहुँचा दें। इसके साथ दो औरतें और थीं। कहा—इन्हें पहुँचा कर तब तुम्हें पहुँचाएँगे। मैं क्या करती, चुप हो रही। यह मुझे दिल्ली ले आया। यहाँ रख दिया। यहाँ का हाल देख-देख कर मैं रोती और तक़दीर को ठोकती थी। पर डाक्टर ने कहा—'देखो, हमने तुम्हारे पति को तार दिया था कि इसे ले जाओ, तो जवाब आया है कि वह अब हमारे काम की नहीं रही। कहो, अब क्या कहती हो।' मैं खूब रोई और मरने पर तैयार हो गई। । धीरज दिया और एक महीने बाद मुझे मजबूर

करके ब्याह कर दिया। मैंने समझा, तकदीर में जो होना लिखा था, वही हुआ। मैं चली गई। पीछे यहाँ से एकाएक आदमी दौड़ा गया और बुलाकर फिर ले आया। यहाँ आने पर पता लगा कि मेरे पति को पता लग गया था और वे पुलिस लेकर यहाँ आए थे, पर लौट गए। ये मुझसे एक लिखे हुए कागज पर दस्तखत कराना चाहते हैं, पर मैं नहीं करती। मैं वहाँ भी नहीं जाना चाहाती, जहाँ इन्होंने मेरा ब्याह किया था। मैं अपने घर जाना चाहती हूँ। इसीलिए इन्होंने मुझे बन्द कर रक्खा है। मुझे बन्द किए दस दिन हो गए। मैं खिड़की से नित्य राह चलतों को इशारे करती थी कि कोई छुड़ाए। आखिरकार पुलिस ने आकर हमें छुड़ाया।"

मैजिस्ट्रेट ने पूछा—तुम्हारे साथ भी कुछ गहना आदि था?

गोमती—जी हुजूर, मेरे पास दो हजार के लगभग गहना था, वह सब इन्होंने जमा करने के बहाने ले लिया।

"अच्छी बात है।"—मैजिस्ट्रेट ने उसे बैठाकर कहा—"अब गवाहों को बुलाओ।"

पुलिस-इन्सपेक्टर ने गवाही दी:—

"मैं अमुक थाने में इन्सपेक्टर हूँ। अमुक नम्बर के कॉन्स्टेबिल के कहने से मैंने आश्रम के मकान पर धावा मारा। ये लड़कियाँ ताले में बन्द मिलीं। तलाशी में यह नकदी, जेवर और कागजात मिले। इन्हें लड़कियों ने शिनाख्त से अपना बताया है।"

इसके बाद और भी दो-तीन गवाही लेकर मैजिस्ट्रेट ने कहा—अच्छा अभियुक्त क्या कहना चाहते हैं?

डॉक्टर ने बयान दिया:—

"हुजूर, मैं पुराना आर्य-समाजी हूँ। सब लोग मुझे जानते हैं। मैं कभी झूठ नहीं बोलता। नित्य सन्ध्या-हवन करता हूँ। ये लड़कियाँ और गवाह झूठे हैं। विधवाश्रम बड़ी पवित्र संस्था है। स्त्रियों का उद्धार करना उसका उद्देश्य है। ये देखिए, छपे हुए सार्टिफिकेट हैं, जो बड़े-बड़े लोगों ने दिए हैं। मैं सबको धर्मपुत्री समझता हूँ। विवाह उनकी राजी परही होते हैं। गहने-कपड़े मैं सब देने को तैयार हूँ। मेरा उद्देश्य अधर्म का नहीं, धर्म का है! धर्म की जय होती है! यही ऋषि दयानन्द का मिशन है!"

गजपति ने कहा—"मैं इस मामले में कुछ नहीं जानता, सिर्फ क्लर्की करता हूँ!" अन्य अभियुक्तों ने भी इन्कार कर दिया।

मैजिस्ट्रेट ने फैसला लिखा:—

"इस मुकदमे के सम्बन्ध में मेरी मुख्तसिर राय है कि ऐसे ही पाखण्डियों से सच्चे धर्म का अनिष्ट होता है। धर्म चाहे सनातन हो, चाहे आर्य-समाजी, या कोई भी समाजी—यदि उसमें सरलता, सत्यता और श्रद्धा तथा विश्वास है, तो वह प्रशंसनीय है! मैं यह जानता हूँ कि प्रत्येक मत में कुछ सच्ची लगन के सत्यवक्ता और धर्मिष्ठ आदमी हैं, जो वास्तव में प्रशंसा के योग्य हैं! इसके सिवा सभी सम्प्रदायों में कुछ पाखण्डी लोग भी होते हैं, जो भीतर कुछ और बाहर कुछ और होते हैं! पर अभियुक्तों जैसे पेशेवर अपराधियों की श्रेणी तो पृथक ही है। ये न केवल पेशेवर अपराधी ही हैं, प्रत्युत उसे किसी समाज या

धार्मिक संस्था की आड़ में छिपा कर, उस संस्था का गौरव भी नष्ट करते हैं! निस्सन्देह समाज के लिए ऐसे आदमी कलङ्क-रूप हैं।

"यह बात तो सच है कि हिन्दू-समाज में स्त्रियों की दुर्दशा का अन्त नहीं है और वे चारों तरफ से प्रताड़ित होकर असहाय हो जाती हैं! उनकी सहायता के लिए ऐसे आश्रमों की स्थापना एक उच्च-कोटि के अस्पताल से कम पवित्र संस्था नहीं! मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि ऐसी संस्थाओं का सम्पर्क बहुधा भयानक, पतिता स्त्रियों से पड़ना बहुत-कुछ स्वाभाविक है और उनके साथ थोड़ा अनैतिक व्यवहार होना भी असम्भव नहीं! विधवाओं के विवाह की उपयोगिता का कौन बुद्धिमान समर्थन नहीं करेगा! परन्तु अच्छी-बुरी सभी स्त्रियों को अवैध उपायों से फुसला कर इकट्ठा करना, उनके आचरण सुधारने तथा उन्हें शिक्षिता करने का कोई उद्योग न करके, रुपया लेकर लोगों को बेच देना; यही नहीं, उन्हें फुसला कर वापस बुलाना और दुबारा-तिबारा बेचना भयानक अपराध और जघन्य पाप है! खास कर जब वह ऐसे आदमियों के द्वारा किया जाय, जिन पर जनता विश्वास करती और सत्पुरुष समझती है! यह सम्भव है कि संस्था को गुण्डों और दुष्ट स्त्रियों से साबका पड़ता रहे, पर यह उचित नहीं कि वह गुण्डों के हाथ में आश्रम को सौंप दे, गुण्डों को अधिकारी बनाए! अभियुक्तों पर जो आरोप प्रमाणित हुए हैं, वे सङ्गीन हैं और ऐसे आदमी समाज के लिए बहुत भयानक हैं! मैं इन्हें उनकी दुष्टता के लिए डॉक्टर सुखदयाल को दो वर्ष और अन्य लोगों को नौ-नौ मास का सपरिश्रम कारावास की सजा देता हूँ!"

दण्डाज्ञा सुनते ही डॉक्टर साहब तो उसी भाँति टेढ़ी गर्दन करके और बूढ़े बकरे की भाँति दाँत निकाल कर हँस दिए! परन्तु अधिष्ठात्री जी धाड़ मार कर रो दीं! गजपति भी गुस्से से होंठ चबाने और गालियाँ बकने लगा!

पुलिस ने सबको पकड़-पकड़ कर सीखचों में बन्द कर दिया! और तीनों स्त्रियाँ मय अपने सामान के स्वाधीन हो और एक बार 'पित्ताजी नमस्ते' का व्यङ्ग करके अपनी राह लगीं!

समाप्त